मनुष्य बनो
BE MAN
ਮਨੁੱਖ ਬਣੋ
اِنسان بنو

विषय-सूची

नं०	विषय	पृष्ठ
१	दुनियां का अजीब और ग़रीब तारीक़	१
२	शाही भिखारी	२
३	विनय	३
४	हमारी बातें	४
५	एकता की कुञ्जी	५
६	देवासुर संग्राम और उद्गीत	१०
७	कर्म भोग अथवा मौज	१२
८	फ़क़ीर साहब का पत्र नन्दू भाई के नाम	२१
९	" " " " "	२२
१०	कर्म भोग अथवा मौज	२४
११	फ़क़ीर साहब का पत्र से० दुर्गाप्रसादजी के नाम	२७
१२	ग़ज़ल	२९
१३	शब्द	२९
१४	सुख किस में है	३०
१५	अनमोल बचन	३४
१६	चेतावनी	३५

दुनियाँ का अजीब व ग़रीब तारीक़

(१) के नाम से यह पुस्तक उर्दू में 'दयाल' मासिक पत्र शिव प्रकाशन मंडल केशवगिरी (हैदराबाद) से दयाल स्वरूप नन्दूभाई जी महाराज के सम्पादकत्व में पिछले मास प्रकाशित हुई है, और इसी प्रकार की एक से एक बढ़ चढ़ कर पुस्तकें इस मासिक पत्र में निकलती रहती हैं। जिसका अकेली पुस्तक का ही मूल्य केवल १॥) होता है। परन्तु दयाल के ग्राहकों को ६) वार्षिक मूल्य भेजने पर ऐसी २ अमूल्य पुस्तकें आधे दामों में ही मिल जाती हैं। एक बार ग्राहक बन कर तथा

शाही भिखारी

के नाम से यह पुस्तक हिन्दी में लेखक दातादयाल महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज शिव मासिक पत्र शिव साहित्य प्रकाशन मंडल पो० दयाल नगर, जि० अलीगढ़ उ० प्र० से दयाल स्वरूप नन्दू भाई जी महाराज के सम्पादकत्व में इस मास प्रकाशित हुई है जो २२८ पृष्ठ की है। मूल्य १॥=) है। यह केवल उपन्यास ही नहीं है बालक मानसिक और अध्यात्मिक सामिग्री बड़ी रोचकता से कूट कूट कर भरी है, और इसी प्रकार की एक से एक अनुपम पुस्तकें इस पत्र में प्रति मास निकलती रहती हैं। यदि आप ६) वार्षिक मूल्य भेजकर इसके ग्राहक बन जावें तो यह पुस्तकें आपको आम के आम गुठली के दाम का काम देंगी। शिव मासिक पत्र ऐसी कल्याण कारी संत वाणी तथा विचारों को प्रकाशित करता है जो देखने से ही सम्बन्ध रखता है। इसके ग्राहक स्वयं बनकर और दूसरों को बनाकर यश के भागी बनें। बड़े काम की चीज़ है।

बेफ़िक्री उर्दू में

(३) पुस्तक के रूप में श्री आनन्द दयाल मंत्री परमदयाल फ़क़ीर सतसंग सभा २५/३२ पुराना राजेन्द्र नगर नई देहली द्वारा प्रकाशित हुई है। मूल्य केवल ॥) है। इस में परमदयाल फ़क़ीर साहब के पिछले वर्ष के दशहरा के सतसंग के वचन हैं। जो अत्यन्त लाभ दायक और चिंता के दूर करने वाले हैं। ऐसी अद्भुत पुस्तक आपको कहीं भी देखने को नहीं मिल सकती। यदि आपकी चिंता दूर न हो जाय तब कहना हम मूल्य वापिस करा देंगे एक प्रति मँगा कर अवश्य लाभ उठाइये।

फ़िक्र करना छोड़ दो तुम ख़ुश रहो।

R. S.

मनुष्य बनो

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वर्ष ५ | भाद्र?द सं० २०१४ अगस्त १९५७ | सं० ११-५६

आजा गले लगा जा, मुझे मोहनी रूप दिखाजा ॥
तुझ बिन मुझको चैन न आवे, पीर विरह की अधिक सतावे !
रह रह कर जिया हिया मुरझावे, जलती आग बुझा जा ॥
दिन में सोच तेरा है पल पल, रात को मन में रहती हल चल !
आजा प्रेम डगर में चल चल, सुख का भेद बता जा ॥
तड़पूँ तरसूँ प्यारे कारन, विलपूँ तलफूँ दम दम छिन छिन !
व्याप रही चित चिन्ता डायन, उसका फन्द कटा जा ॥
मन मन्दिर मेरा पड़ा है सूना, विपत कलेश रहे दिन दूना !
तू क्यों हो बेदरदी ऊना, घट के घट को बसा जा ॥
ज्योत में ज्योत जले दिन राती, अन्धकार की मिटे उत्पाती !
तेरी छवि अति मुझको भाती, सूरज चन्द्र लजा जा ॥
आँखें बहे नीर की धारा, जग में मेरा कोई न सहारा !
तू ही साँचा है रखवारा, काल से अब तू बचा जा ॥
जोग विराग कछू नहीं सूझे, ज्ञान ध्यान गम नेक न बूझे !
माया करम से नित ही जूझे, भव दुख आप हटा जा ॥
सत गुरु रूप का दर्शन प्यारा, गुरु मूरति है सार का सारा !
मैं हूँ प्रेम प्यास का मारा, अमृत बूँद पिला जा ॥
तू है दाता तू हितकारी, तू समरथ तू जगदाधारी !
[illegible] बलिहारी, बिगड़ी मेरी बना जा ॥

हमारी बात

क़दर दां ही क़दर करते हैं हमारी बात की।
वह समझते हैं हक़ीक़त क्या है इन ख़्यालात की॥
ख्याल की ताक़त से वाक़िफ़ बहुत ही कम लोग हैं।
क्या खबर हो उनको फिर इन हालात और वाक़ात की॥

"मन ही का व्यवहार जगत में, नाहें जानें लोग"

प्रेमी पाठकों की सेवा में यह पांचवें वर्ष का ग्यारहवां अंक प्रेषित है। इस पत्रिका के ध्यान पूर्वक अध्ययन करने से आपको भली भाँति ज्ञात हो गया होगा कि किन किन विचारों का हम समयानुकूल प्रचार कर रहे हैं। जिससे कि हमारा जीवन सुख-दायी और आनन्द मय हो सके। यह जगत संकल्पमय है जैसे २ हम संकल्प, विचार, इच्छा, भाव, अभिलाषा करते हैं वैसा ही खेल देखते हैं। जैसा ख्याल वैसा हाल। जैसी मती वैसी गती। जैसी दृष्टी वैसी श्रृष्टी। जैसी करनी वैसी भरनी। यदि हम शुभ संकल्पमस्तु की शिक्षा ग्रहण करलें तो हम मनुष्य भी बन सकते हैं और यही संतों का मार्ग इस पत्रिका में बतलाया गया है हम ऊट पटाँग सोचते रहते हैं इसका परिणाम ऊँटपटांग ही होता रहता है और हमारा विचार ही हमको ले डूबता है।

इन्सां को चाहिए कि न सोचे बुरी कभी।
वह बात होकर रहती है आई जो ख्याल में।

अब देखना यह है कि आप कहां तक इसके अभ्यासी अथवा क्रियात्मक रूप में साधन कर रहे हैं तब तो आपका और हमारा कार्य सफल है अन्यथा न हमारे इस कार्य का परिणाम और न आपके ही अध्ययन का कुछ लाभ? क्योंकि हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि अभी बहुत से पाठक गणों ने अपना वार्षिक मूल्य नहीं भेजा है आशा है कि शीघ्र से शीघ्र भेजने की कृपा करेंगे। यदि कोई सज्जन आगामी वर्ष में पत्रिका न मंगाना चाहें तो पत्र द्वारा इस कार्यालय को सूचित करने का कष्ट करें।

एकता की कुञ्जी

(ले० दातादयाल महर्षि जी) मनोनियम से

प्रत्येक मनुष्य मानसिक सकल्प [illegible] कर भेज सकता है। और आई हुई धार को ग्रहण कर सकता है। परन्तु प्रकृति माता ने एक चतुरता प्रद बंधन भी कर रक्खा है जिससे कि प्रत्येक संदेशा जो भेजा गया है वह बिना भेजने वाले की आज्ञा के प्रत्येक न पकड़ सके। दोनों बातें सम्भव हैं। इस प्रकार के भी संदेशे भेजे जा सकते हैं जो एक मनुष्य से सम्बन्ध रखते हों, और ऐसे भी भेजे जा सकते हैं जो संसार से सम्बन्ध रखते हों।

जिस नियम के अनुसार यह संभव है मैं उसकी व्याख्या कर दूँगा। प्रत्येक मनुष्य का मस्तिष्क प्रकृति के नियमानुसार एक विशेष प्रकार का गढ़ा गया है जिससे कि मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार उसमें अन्तर उत्पन्न कर सकता है। या उस पर मनोनियम का प्रबल प्रभाव डालकर तनिक देर के लिये कुछ का कुछ बना दे। प्रत्येक व्यक्ति का मस्तिष्क प्रथक है परन्तु संसार में कुछ व्यक्ति इस प्रकार के भी मिलेंगे जिनके मस्तिष्क एक समान हैं। और जैसे अनेक सितारों की खुँटियों को मरोड़ने से सब एक साथ ही बजने लगते हैं वैसे ही इनमें भी एकता हुआ करती है। इसलिए जब कोई संदेसा भेजा जावेगा तो जिन व्यक्तियों के मस्तिष्क उस प्रकार के हैं वह उसको ग्रहण कर लेंगे और दूसरों पर उसका कुछ प्रभाव न पड़ेगा। मैं इसका वर्णन और व्याख्या के साथ कर दूँगा।

सितार या सारंगी के बजाने वाले अपने बाजों के तार को इस प्रकार मिला देते हैं कि उन सब में एक ही प्रकार का स्वर उत्पन्न हो। वह सब की खुँटियों को विशेष सीमा तक ऐंठ देंगे और जिस समय तार को छेड़ दिया जावेगा तो सब

बाजों में से एक ही प्रकार का शब्द उत्पन्न होगा। इसी प्रकार यदि वस्तु से व्यक्ति अपने अपने मस्तिष्कों को किसी विशेष अवस्था का बना लें तो उनमें भी इसी प्रकार की एकता उत्पन्न होगी। और उनका भी ऐसा ही प्रभाव होगा। किन्तु जिनके मस्तिष्कों की अवस्था ऐसी न होगी उन पर कुछ प्रभाव न होगा।

सितारों और सारंगियों के तारों के ऐंठने का उद्देश्य इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है कि उसके स्वरों में एकता उत्पन्न की जाय। जिससे कि सब में एक ही प्रकार का शब्द उत्पन्न हो जिस समय एक के तार को छेड़ दिया जावेगा दूसरों से भी वैसे ही शब्द उत्पन्न होंगे। यदि सितार के एक तार से फी सैकिंड २५६० बार थरथराहट का शब्द निकलता है तो दूसरे सितारों से भी वैसा ही होगा। मनुष्य के कान कम से कम फी सैकिंड २४ बार और अधिक से अधिक ३२७६८ बार एक शब्द को सुन सकते हैं। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति संकल्प को एक सीमा पर आरूढ़ करके विशेष प्रकार का संदेशा भेजें तो जिन जिन व्यक्तियों का मस्तिष्क उस सीमा पर आरूढ़ होगा सब उससे परिचालित हो जांयगे। परन्तु इसमें अन्तर इच्छा शक्ति की दृढ़ता के कारण से पकड़ना भी सम्भव है।

इसी नियम के अनुसार अनेक स्थानों पर बेतार के सहारे शब्द को ग्रहण कर लेते हैं। सम्पूर्ण टैलीग्राफ के पत्र एक विशेष अवस्था पर तय्यार कर दिये जाते हैं। और आवश्यकता के समय इनमें परिवर्तन होता रहता है। जब सूचना देने वाला किसी विशेष स्थान को सूचना देना चाहता है तो वह उस स्थान के यंत्र की अवस्था की जांच कर लेता है तब अपने यंत्र को उसी अवस्था में करके सूचना भेजता है। यह सूचना यद्यपि समस्त संसार में चक्कर लगा आती है परन्तु उस स्थान के अतिरिक्त और कोई उसे ग्रहण नहीं करता। यदि सब स्थानों

की अवस्था एक जैसी हो ी तो सब उसको ले सकते। क्योंकि प्रकाश, बिजली और संव ल्प की लहरें आकाश की पटरी पर १८६००० मील फी सैकि ; के हिसाब से चलती हैं।

प्रत्येक व्यक्ति की मस्तिष्क अवस्था उसके विचार और उसकी इच्छा शक्ति के अनुसार होती है। किसी किसी व्यक्ति का मस्तिष्क भी इस प्रकार का हुआ करता है कि किसी किसी से उसकी एकता हुआ करती है सम्भव है कि यह वह व्यक्ति न हो जिसको संदेश भेजा जा रहा है किन्तु मानसिक एकता एक अचानक घटना है। इसलिए मनोनियम की त्रुटि से जो सम्बन्ध इस प्रकार उत्पन्न किये जांयगे सम्भव है कि लाभ के स्थान में हानि पहुँचावें।

कार्य कुशलता की कुञ्जी यह है कि मनुष्य को मालूम होना चाहिए कि विशेष प्रकार की बातें दूसरों से किस प्रकार जानी जा सकती हैं। यह बात अत्यन्त लाभदायक होगी और साथ ही दूसरों की अशुभ वासनाओं से रक्षा करेगी।

अन्य व्यक्तियों के साथ अपने आपको सम अवस्था में आरूढ़ कर लेना कुछ कठिन बात नहीं है परन्तु विचार की लहर को इस प्रकार घटा बढ़ा लेना कि दूसरा व्यक्ति उसके विचारों की लहरों को उतने ही बार ग्रहण कर सके कठिन है। और इसके लिए परीक्षा, अध्ययन, और साधन की आवश्यकता है। सबसे प्रथम इसको भ... समझ लेना चाहिए कि सब प्रकार के संकल्प के थरथराने वाले स्वर सदा ...क हुआ करते हैं। प्रेम का स्वर और है घृणा का और। यदि घृणा के विचार भेजे जाते हैं तो जिनमें इस प्रकार की घृणा विद्यमान होगी वह प्रचलित हो जावेंगे। यह विचार और समस्त व्यक्तियों की घृणा को अपनी ओर आकर्षित कर लेंगे और जब वह इस प्रकार बलवान होकर लौट आवेंगे तो भेजने वाले को अत्यन्त हानि

होगी। यदि प्रेम के भाव भेजे गये तो इसी प्रकार वह अपनी मात्रा बढ़ाकर लौट आवेंगे और भेजने वाले की सहायता करेंगे जिस समय किसी व्यक्ति को काम काज में सहायता लेनी हो अथवा किसी विशेष कार्य को कुछ निर्माणादि करना हो, तो सबसे पहले उसको अपने चित्त को एकाग्र करके सोचना चाहिए फिर उसको अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ उन व्यक्तियों के पास भेजने की चेष्टा करनी चाहिए जो उसकी इच्छा और उद्देश्य का ज्ञान रखते हैं। यदि उन व्यक्तियों ने मनोनियम की सहायता लेकर अपने आपको रोक नहीं रक्खा है तो वह अज्ञात रूप से विचार भेजने वाले की अपनी विद्या से अवगत कर देंगे। हम ऐसे मनुष्य के हृदय तक मानसिक रूप से बराबर पहुँच सकते हैं जिसके विचार हमारे विचारों से मिलते हों। और जिनके विचार हमारे विचारों से भिन्न होंगे उन तक पहुंचने में कठिनता होगी। परन्तु उन तक पहुंचना भी असम्भव नहीं है। मुमकिनाते हर हो आलम सब हमारे दिल में है।

दूसरों के साथ मेल और योग का होना आवश्यक नियम है। किन्तु अपने मस्तिष्क की अवस्था को इस प्रकार की बना लेना जैसी कि एक बड़े बुद्धिमान और अनुभवी मनुष्य की है बड़ा कठिन कार्य है। इसके लिये परिश्रम और अभ्यास की आवश्यकता होगी। हम प्राणियों के साथ सदैव मेल जोल रखते हैं। और उनके साथ हमारी वैसे ही एकता हो जाती है और हम और वह दुख सुख में मिल जाते हैं जैसे सितारों में परस्पर एकता हो जाती है। और एक को छेड़ देने से दूसरे सितार अपने आप बजने लग जाते हैं। इसी प्रकार हम भी एक दूसरे के दुख में दुखी और सुख में सुखी होते हैं। पुत्र को हँसते हुए देखकर माता का कलेजा प्रफुल्लित हो जाता है और दुर्भाग्यवश उसके चोट लगजाती है तो माता का हृदय

टुकड़े टुकड़े हो जाता है। चोट दूसरे शरीर को लगी है परन्तु दुख दूसरे शरीर को हो रहा है। यह मेल और एकता का प्रताप है। यदि यह अभिलाषा हो कि अन्य व्यक्तियों की समझ बूझ हमारी जैसी हो जाय तो उनसे घृणा न करो प्रेम करो और प देखोगे कि तुम्हारी इच्छा शीघ्र ही पूर्ण होता ए और वह री इच्छा के अनुसार बन जावेंगे।

इस पुस्तक के लिखते समय मैं अपने चित्त को एकाग्र करके उन विचारों को अङ्कित करता जाता हूँ जो अपने आप मेरे पास चले आरहे हैं। और इसी प्रकार चित्त को एकाग्र कर लेने से ही मुझको मनोनियम का ज्ञान मिला। बिजली के कौंधे के समान उसकी एक लपक मेरे हृदय पर पड़ी और उसका नाम मुझे ऐसा दिखाई दिया मानो सुनैरे अक्षरों से वह अंकित है। मैंने इस नियम के अनुसार निश्चय किया और मैं इस बात के लिए अपने आपको धन्य कहता हूँ कि संसार को मेरे द्वारा इस नियम का पता मिलेगा। कुछ व्यक्तियों का विचार है कि मैं आकाशवाणी के द्वारा इसको लिख रहा हूँ। इसमें इतना अवश्य सत्य है कि मुझको दूसरों के मानसिक विचारों का ज्ञान मिल रहा है। और उन सब व्यक्तियों के साथ मेरी एकता है। बुद्धि किसी एक प्राणी की सम्पत्ति नहीं है। उसका प्रत्येक प्राणी अधिकारी हो सकता है। यह बात संभव नहीं है कि वह किसी एक विशेष व्यक्ति की सम्पत्ति बन जाय। और किसी एक के ही अधिकार में ही रहे। जो मनुष्य चाहे उसका अधिकारी बन सकता है। और एक दूसरे के पश्चात् अधिकारी बनेंगे। जब एक मनुष्य बीत जाता है तो दूसरा उसी जैसा उत्पन्न हो जाता है।

देवासुर संग्राम और उदगीत

(ले० दातादयाल महर्षि जी महाराज)

ईश्वर ने सृष्टी रचते समय दो प्रकार के जीव उत्पन्न किए एक देवता थे और दूसरे दैत्य। इनको सुर और असुर भी कहते हैं। एक का स्वभाव दूसरे से भिन्न है और दोनों आपस में नित्य ही प्रत्येक स्थान और प्रत्येक वस्तु में हाथा बांई करते रहते हैं। देवता तो शुभ आचरणों वाले सतोगुणी होते हैं और दैत्य अशुभ आचरण वाले तमोगुणी होते हैं। इनकी लड़ाई देवासुर संग्राम कहलाती है। यह हमारे तुम्हारे शरीर में भी हैं और पत्ते २ बूँद बूँद और रेत के छोटे छोटे कणों में भी है। कोई स्थान ऐसा नहीं जहां पर यह रहकर मुठभेड़ न करते हों। कुत्ते बिल्ली जैसी इनकी दशा है, यह लड़े, लड़ते रहे। कभी देवता जीते और असुर हारे। कभी असुर जीते और देवता हारे। देवता घबरा गये। असुर फिर भी बड़े बलवान थे।

तब देवताओं की समझ में यह बात आई कि यदि उदगीत (उधार राग, अन्तर का राग, प्रणव, ओं अथवा अनहद धुन) गाया जाय तो असुर सदैव के लिए हार जावेंगे।

तब वह आंख से बोले "तू हमारे लिए उदगीत गा कि देवताओं को विजय मिले।" आँख ने उदगीत गाया अपने लिए अच्छा अच्छा और दूसरे के लिए बुरा २ गाया। असुर पहुँचे। आँख को पाप से छू दिया। वह निबल होगई। तब देवता हारे और असुर जीते। और वह भाग निकले।

तब इन्होंने कान से उदगीत गाने की प्रार्थना की। कान ने अच्छा अच्छा अपने लिए और बुरा बुरा दूसरों के लिए गाया असुरों ने पाप से उसे छू दिया। और देवता भाग निकले।

फिर देवताओं ने जिभ्या से उदगीत गवाया उसने भी अच्छा अच्छा अपने लिए और बुरा २ औरों के लिए गाया। असुरों के पाप से छू जाने पर इसका भी वही परिणाम हुआ। देवता हारे और असुर जीते।

तब मन, नाक, हाथ सब से बारी बारी पर उदगीत गवाया। असुर पहुँचे। सबको एक दूसरे के पीछे पाप से छू दिया और यह नष्ट भ्रष्ट होगए। देवताओं की हार ही होती रही।

अन्त में यह प्राण के पास गए और कहा "तुम उदगीत गाओ। प्राण ने बुराई भलाई अपना पराया और राग द्वेश का भाव नहीं होता। (क्या तुम नहीं देखते कि प्राण सबके सोते समय चलते रहते हैं। चाहे चोर चोरी करें या साधू भलाई करें, यह किसी की ओर ध्यान नहीं देते) असुर पहुंचे। पाप से छूना चाहा और छूते ही ऐसे भ्रष्ट हुए कि फिर उनका ठिकाना ही न रहा और देवताओं की जीत हुई। असुर हार कर भाग निकले।

प्राण से जो उदगीत गाते हैं उनको सच्ची विजय प्राप्त होती है और शत्रु ऐसे नष्ट हो जाते हैं कि जैसे मिट्टी का डेला किसी चट्टान से टक्कर खाकर पिस जाता है और फिर उसमें टकराने की शक्ति नहीं रहती।

यदि मनुष्य प्राण के इस भाव को लेकर अनहदवाणी का साधन करे तो जगत के संग्राम में उसे भी ऐसी ही विजय मिले। यदि यह बात समझ में न आये इसे किसी संत सतगुरु से पूछ देखो और काम करो।

शब्द

राग अनहद का सुनो, अन्तर में अपने आनकर।

चित की वृत्ति रोकलो, सुमिरन भजन ध्यान कर ॥
आंख कान और मुख को मूदो, यह सुगम साधन करो,
चढ़ चलो घट के गगन में, पुतलियों को तान कर ॥
गुरु से गुरु गम लेके, सतसंगत में सीखो यह यतन ।
काम में लगजाओ फिर उपदेश को सत जानकर ॥
बाहरी बातों को छोड़ो, अन्तरी साधन करो ।
शब्द का लो आसरा, तुम उसकी महिमा जानकर ॥
राधास्वामी ने कहा, गुरू करना गुरु को जानकर ।
पानी पीना पीछे पहले, पानी लेना छानकर ॥

कर्म भोग अथवा मौज

(ले० परमदयाल फ़क़ीर साहब)

मित्रो ! क्षणिक मात्र जीवन के मिलने वालो !

इससे पहिले कि मैं इस विषय पर अपने विचार तथा अनुभव को प्रगट करूँ यह बता देना अनिवार्य समझता हूँ कि मेरे लेख वास्तव में कर्म भोग वश अथवा मौज आधीन होते हैं। जीवन की लहर विचारों की धार को लेखनी द्वारा कागज़ पर लाने का प्रयत्न करती है। कोई निज स्वार्थ अथवा मानव व धन की इच्छा या किसी का खंडन मंडन मेरे जीवन का उद्देश्य नहीं है। संम्भव है मेरे इन शब्दों से प्राणियों को अहंकार प्रतीत हो परन्तु मैं यह बतला देना अनिवार्य समझता हूं कि मेरी नीयत स्वच्छ और स्पष्ट है यह एक सचाई है। कोई समय था जब मेरा अस्तित्व उस परम तत्व, सर्वाधार, अविनाशी के प्रेम के अन्तर्गत दातादयाल महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज के दरबार में उपस्थित हुआ। उनके सतसंग से मुझे परम पुरुष पूर्ण धनी हज़ूर राधास्वामी दयाल की शिक्षा के संस्कार मिले। प्रारम्भ में उस पवित्र शिक्षा का अथवा उनके अनुभव का समझना मेरे

लिए कठिन था। विवश होकर अपने मन बचन कर्म अथवा जीवन को अधिकार में रखते हुए उनकी शिक्षा को अपने जीवन में धारण करने का प्रयत्न किया और वास्तविकता के रहस्य को समझने का इच्छुक हुआ और जो कुछ अनुभव में आया उसको बिना किसी लगाव लपेट अथवा बनावट के अपने लेखों और बचनों द्वारा व्यक्त करने का प्रयत्न किया यद्यपि मैं अनुभव करता हूँ कि जो बात मैं कहना चाहता हूं अथवा जो रहस्य बताना चाहता हूँ उसके व्यक्त करने के लिए लेखनी और जिभ्या साथ नहीं दे रही है या मुझे उचित शब्द नहीं मिल रहे हैं।

मेरे विचार में इसी कारण संत मत में सतसंग पर बल दिया जाता है जहां कि पूर्ण पुरुष अपने अनुभव अथवा आशय को संकेत द्वारा (सैनबैन) रैडियेशन द्वारा समझाने का प्रयत्न करता है। या उस दशा को दूसरे में लय किया जा सक्ता है। मैं नहीं कह सकता कि पूर्ण पुरुषों का मत क्या है। यह भी संभव है कि मैंने उनकी वाणी को यथार्थ रूप में समझने की शक्ति प्राप्त न की हो। इसी कारण मैं बार बार पुकार करता रहता हूं कि अनुभवी पुरुष अपने निज अनुभव के प्रकाश में मेरा सुधार कर सकते हैं। जब मैं पूर्ण पुरुषों की वाणी का निज अनुभव से मिलान करता हूँ तो विश्वास करने के लिए विवश हो जाता हूं कि मेरा अनुभव ठीक है। मेरे विचार में संत मत के अनुयायी यथार्थ मार्ग से भटक गए हैं अतः कुमार्ग ग्रहण कर रहे हैं। और संत मत की वास्तविक शिक्षा से कोसों दूर चले गए हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि वह अपने क्रियात्मक जीवन में अशांत भ्रांत और दुखी हैं। पक्षपात और हठ धर्मी जो संत मत में आध्यात्मिक रोग माना गया है उनकी नस नस में प्रवेश कर गया है। एक केन्द्र के सतसंगी दूसरे केन्द्र वालों से घृणा और द्वेश रखते हैं। दूसरों का तो प्रश्न ही नहीं उठता जब वह स्वयं

अपने कुटंबियों और संबन्धियों से घृणा करने से नहीं चूकते सतसंगी और अन्य पुरुषों में मतभेद रखते हैं । इसका कारण इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है कि उन्होंने अभी तक पूर्ण पुरुषों की राय अथवा मत को अपने क्रियात्मक जीवन में ग्रहण नहीं किया । यद्यपि वाह्य रूप में वह उनके नाम लेवा हैं। जहां तक मेरी समझ, अनुभव का सम्बन्ध है वह यह है:— प्रत्येक प्राणी वास्तविकता के दृष्टि कोण से पूर्ण हैं। पूर्ण का यह अर्थ नहीं है कि वह स्वयं ईश्वर है बल्कि उसका मन्तव्य यह है प्रत्येक प्राणी के अन्तर जीवन की समस्त सोपानें विद्यमान हैं और उनका ज्ञान न होने के कारण वह अपने आपको सेवक, आदि मानने लगता है। प्रत्येक प्राणी के अन्तर पांच कर्म इन्द्रयां पांच ज्ञान इन्द्रियां, मन, बुद्धि, चित्त अहङ्कार और आत्मा विद्यमान है और वह उनका आनन्द लेने अथवा जीवन को श्रेष्ठतर अवस्था में रखने की शक्ति प्राप्त कर सकता है साथ ही इन सब से पृथक होकर अपने निज रूप से जो इन सबका आधार है लय हो सक्ता है। चूँकि कर्म और ज्ञान इन्द्रियां, मन, बुद्धि, चित, अहङ्कार और आत्मा प्राणी की अपनी सम्पत्ति है इसलिए प्रत्येक प्राणी पूर्ण पुरुषों के बतलाए हुए उपाय तथा साधन का अभ्यासी होकर उन पर अधिकार पा सक्ता है। इसका अनुभव मुझे निज रूप में हो चुका है। मुझे स्वयं यह शक्ति प्राप्त है कि जिस समय और जैसे चाहूं मैं अपने अन्तर अपने आपको आनन्द-मय बना सकता हूं साथ ही अपने अस्तित्व को मिटाकर अथवा व्यक्तित्व का खो कर व्यापी हो जाता हूं। जहां न मैं है न तू, न देना न लेना, न स्वामी न सेवक, न पन्थ न सम्प्रदाय यहां तक कि अपने इष्ट तक का विचार लोप हो जाता है । दूसरे शब्दों में प्राणी का अपने आप पर पराधिकार होना ही सर्व श्रेष्ठता है इस सर्व श्रेष्ठता को प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है कि प्रा

किसी पूर्ण पुरुष की आज्ञानुसार पहले पूर्णता का इष्ट बनाए अन्य शब्दों में पूर्णता का ध्यान करे और उसका स्मरण करता हुआ उस में लय होना प्राप्त करे। इस साधन का दूसरा नाम सुमिरन, ध्यान और भजन है। स्मरण रहे जब तक इष्ट पूर्णता का न होगा प्राणी इस अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकता।

नामधारियों की साधारणतः क्या दशा है ? वह राम, कृष्ण, हज़रत मौहम्मद, गुरू नानक कबीर साहब, राधास्वामी दयाल महर्षि जी, बाबा सांवलेशाह, फ़क़ीरचन्द, नन्दूभाई आदि को अपना इष्ट समझते हैं यह भूल की बात है। मित्रो !

इष्ट है आधार सबका वह न हड्डी मांस है।
न फ़क़ीर कबीर कोई न वह धरन आकाश है ॥
वह है पूर्ण आश नर की वह ही पूर्ण विश्वास है।
बिन उस इष्ट का धारण किए नर जगत में उदास है ॥

केवल इसी एक रहस्य या बात को समझने के लिये पूर्ण पुरुष के सतसंग की आवश्यकता है। साधारणतः जो डेरे धाम सतसंग घर हैं उनके आचार्य इस प्रकार का सतसंग नहीं कराते क्यों कि ऐसी शिक्षा से उनके केन्द्र टूटते हैं वह महात्मा अपने डेरे, धाम और संगति को उन्नति देने के लिये प्राणियों को अन्य उपायों से अपने पीछे लगाते हैं। जीव विचारे जीवन भर उनमें फंस जाते हैं और जीवन के अन्तिम समय में पश्चाताप करते हैं। यदि सत्यता दृष्टि में रक्खी जाये तो मैं इन डेरा धामों का विरोधी नहीं हूं बल्कि प्रारम्भ में इनको अनिवार्य और आवश्यक समझता हूं किंतु साथ ही यह कहने से चुप नहीं रह सकता। कि जीवों का सदैव के लिये किसी धर्म पंथ अथवा किसी नाम तथा धाम के साथ बन्धित रखना और वास्तविकता को छुपाना महान पाप (अपराध) है जिसका निश्चित नहीं हो सकता। पूर्ण पुरुषों ने पंथ की नींव डाली थी उनका अभिप्राय

जीवों को रहस्य को समझते हुये शनैः शनैः मुक्त करना था न कि फंसा रखना। स्कूल और कालिज शिक्षा देने को होते हैं। अस्पताल स्वास्थ्य देने के लिये होते हैं। यदि समस्त जीवन जीवों को कालिज, स्कूल या अस्पताल में ही रक्खा जावे तो यह कहाँ की बुद्धिमानी होगी।

इस विचार से मैंने अपना कोई डेरा, धाम नहीं बनाया इसका अर्थ यह नहीं कि मैं डेरा धाम का विरोधी हूँ बल्कि मैं चाहता हूँ कि लोग सतसंग करें बात को समझें, अपनी रहनी को बनाकर सुख और शांति का जीवन व्यतीत करें और बस। डेरे अन्त में हठधर्मी और पक्षपात को उत्पन्न करने लगते हैं।

सतसंग में लोगों की सुविधा और आराम के लिये इन वस्तुओं की भी आवश्यकता है। बल्कि इनका होना अनिवार्य है। राधास्वामी दयाल के इस आदेश को न भूलना चाहिये।

शिष्य को ऐसा चाहिये गुरू को सब कुछ दे।
गुरू को ऐसा चाहिये शिष्य का कछू न लेय॥

यह आदेश सोने के शब्दों में लिखा जाना चाहिये।

जिन प्रेमियों ने मेरी पुस्तकें मनुष्य बनो, निष्कलंक-अवतार, यथार्थ सन्देश आदि और मनुष्य बनो पत्रिका के अनेक लेख पढ़े हैं वह जानते हैं कि मैं स्पष्ट शब्दों में कहता रहता हूँ कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता न किसी को स्वप्न में दर्शन देता हूँ फिर भी प्राणी भांति २ की बातें कहते हैं। कोई कहता है कि अमुक व्यक्ति मृत्यु के समय कहता था कि दयाल फ़क़ीर मुझे लेने आये कोई कहता है वह अमरीका में मुझ पर प्रगट हुये थे कोई कहता है कि आप मेरे अन्तरी साधन में मेरी सहायता करते हैं कोई कहता है कि मैं मशीन के पट्टे में आगया था आपने मुझे निकाल बाहर किया। मैं सत्य कहता हूं कि मुझे

इन घटनाओं का कोई पता नहीं। मैं किसी के अन्तर नहीं जाता किंतु प्राणी अज्ञानवश मुझे मानते हैं सेवा करते हैं ऐसी दशा में यदि अज्ञानी पुरुषों से कुछ लेता हूँ तो यह महान अत्याचार है चार सौ बीस का अपराध है यही कारण है कि स्वामीजी महाराज की पवित्र पुनीत विभूति ने उच्च स्वरों में वर्णन किया—

गुरू को ऐसा चाहिये शिष्य का कुछ न लेय।

मैं स्पष्ट कहता हूँ कि मैं किसी की सहायता को नहीं जाता। वर्तमान आचार्यों से प्रार्थना करता हूँ कि यदि वह किसी की सहायता के लिये जाते हैं तो शपथ पूर्वक वर्णन करें। अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि फिर वह सहायता करने वाला कौन है? वह प्राणी का अपना विश्वास, आत्मा, आधार, निजरूप, ज्ञात, मालिक है जो प्रत्येक प्राणी के भीतर विद्यमान है। वाह्य पूर्ण पुरुष केवल संस्कार देता है वह संस्कार प्राणी के भीतर उसके अपने विश्वास और श्रद्धा के अनुसार प्रगट होकर उसकी सहायता करता है।

मैं सत्यता को सन् १९१८ से जानता हूं। सन् १९२१ में जब मैं आर्ती करने के लिये दातादयाल के हर वारे में उपस्थित हुआ तो उस समय धाम बन रहा था मैं जानता था कि हानि देने वाले अज्ञानी होते हैं इसलिये हाथ जोड़ कर मैंने दाता से निवेदन किया महाराज! धाम उजड़ जायगा और समय आने पर वही हुआ। यही कारण है कि डेरे, धाम, मन्दिर, मसजिद, गुरुद्वार और तीर्थ आदि का परिणाम अन्त में खराबी का कारण बन जाते हैं और उनमें कार्य करने वाले पुजारी आदि वह कार्य करते हैं जो मनुष्यता के विरुद्ध होते हैं। चूँकि उन वस्तुओं में जो धन लगाया जाता है वह अज्ञानवश दिया हुआ होता है इसलिये डेरों और धामों में खराबी का आना अनिवार्य है।

मैं दान का विरोधी नहीं। दान दो। दान देने वाले का कष्ट दूर होता है। जनता के हित के लिये जो कार्य किया जाता है वह हितकर है परन्तु महात्माओं को स्वीकार नहीं करना चाहिये।

राधास्वामी मत अथवा पूर्ण पुरुष के मत में दो शब्द काल मत और दयाल मत से बोधित है। वह क्या हैं? जो वस्तु मन के संकल्प से प्राप्त होती है वह कालमत है और जो इस की जगह पर वस्तु हमारे अपने पास है हमारी निजी अपनी है अपनी जस है अपना आप है, ध्यान पूर्वक उसका आनन्द लेना दयाल मत है।

यह लिख ही रहा था कि गाँव का रहने वाला एक सत-संगी आ गया कहने लगा महाराज! मुझे सर्प ने काट लिया था उसी समय जब मेरी तबियत घबराने लगी आपने अन्तर में प्रगट होकर संकेत किया कि डरो मत। भ्रम को छोड़ दो तुमको कोई कष्ट नहीं होगा और इसी प्रकार की बहुत सी बातें कहीं अतः ऐसा ही हुआ। विश मेरे शरीर में नहीं फैला। अब मेरी सुनिए। सत्यता यह है कि मैं इस घटना से नितान्त अनभिज्ञ हूं। फिर प्रश्न होता है कि वह कौन था जिसने उसकी सहायता की? सहायक वह संस्कार था जो वह सतसंग में ले गया था। उसके मनके उस संस्कार ने मेरे रूप द्वारा उसकी सहायता की। इस प्रकार की अनेक घटनायें सतसंगियों के साथ बीत चुकी हैं जो उन पर प्रभावित हैं परन्तु मित्रो! है यह सब काल और माया का खेल अज्ञानी जीव इस प्रकार की घटनाओं से प्रभावित होकर रुपया भेट करते हैं और महात्मा जन जीवों के अज्ञान से लाभ उठाते हुए संसार में धन, मान और प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। पूर्ण पुरुषों का कार्य संसार में दुखी और अशान्त जीवों को मन और उसके संकल्प विकल्प के चक्करों से ऊपर ले जाकर जीवों को स्वतन्त्र और शांत मय बनाना है। संसार

में अनेक प्रकार के जो धर्म, पंथ, सम्प्रदाय दृष्टिगोचर हो रहे हैं और जिनका परिणाम परस्पर द्वेष, ईर्षा और घृणा के रूप प्रति दिवस सरफटोल है वह सब अज्ञान को ही उत्पन्न है।

चूंकि सत्संङ्गों में साधारणतः अनुचित प्रोपैगैन्डा किया जाता है परस्पर द्वेष, ईर्षा और घृणा के विचारों को उभारा जाता है इस कारण मानवीय जीवन कष्ट, कलह, क्लेश का घर बनाया गया है। इसलिए इस युग में प्रकृति अथवा मौज ने मुझे भेजा है। क्यों! कि निज अनुभव के आधार पर पूर्ण पुरुषों की शिक्षा को स्पष्ट और खुले शब्दों में प्रगट कर जाऊँ। यदि मैं त्रुटि पर हूँ तो अनुभवी पुरुष इसमें संशोधन कर सकते हैं अन्यथा वास्तविकता की शिक्षा को फैलाने में मेरे साथी बन कर जीवों के अज्ञान को दूर करने का प्रयत्न करें। मेरा आशय न किसी का खण्डन है न मंडन है। पूर्ण पुरुषों ने मनुष्य की सर्व श्रेष्ठता और महानता का स्वीकार किया है। यदि प्राणी के मन में पूर्णता का विचार भर दिया जाय तो वह अपने और दूसरों के जीवन में परिवर्तन लाकर आनन्द मय और शान्तमय बना सकता है। कबीर साहब गुरू नानक साहब और सत्य पुरुष राधास्वामी दयाल जो कुछ वर्णन कर गए अपने निज अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि वह सोलह आने सत्य है। यदि उनका विचार सर्व व्यापी हो जाता तो मानवीय जगत की घरेलू, देशीय, सामाजिक और मानसिक जीवन श्रेष्ठतर और आनन्द मय हो जाता और हम सब अपने मन के रूप को समझ कर उस पर अधिकार रखते हुए आनन्द मय और शांत जीवन के अधिकारी हो जाते। गुरू नानक साहब ने वर्णन किया है "मन की गति कही न जाय।" जिस प्रकार मनुष्य का भाव और विश्वास होता है वही उसके सम्मुख आता है। पूर्ण पुरुष पुकार करते हैं कि भूल भ्रम में पड़े हुए मनुष्य तू

आप पूर्ण है पूर्णता पर विश्वास रख समय आने पर तेरा यह विश्वास रङ्ग लायेगा और जीवन को शांत मय बना देगा ।

पूर्ण पुरुष अपने सतसंग में कभी कमजोर ख्याल नहीं देते वह मनुष्य को आशावादी बनाते हैं। न जीवन भर किसी को अपना पशु बना रखते हैं वरन् मनुष्य को मनुष्यता का नियम समझा कर उसको अपने ही रूप की ओर जो कि पूर्ण है लौटने की सम्मति देते हैं। पूर्ण पुरुषों का यही सिद्धांत होता है। हां ! यदि कोई महात्मा स्वयं पूर्ण नहीं है हेर फेर कर बात करता है अन्तर और बाहर में समानता नहीं है तो दूसरी बात है। उसकी संगत से तुम में किस प्रकार स्वतंत्रता आ सकती है तुम स्वयं विचार करो।

इसलिये आदेश है कि पूर्ण पुरुष की खोज करो। जो प्राणी पूर्णता को प्राप्त कर लेता है उसके संकल्प में शक्ति होती है वह जो कुछ कह देता है। उसे पूर्ण होना चाहिये। यदि नहीं होता है तो कहने वाला पूर्ण नहीं है ।

जिस प्रकार एक सुन्दरी के देखने से प्राणी के मन में काम अंग जाग उठता है या एक सुन्दर पुष्प को देखने से प्रकृति माता की कारीगरी का नकशा दिल पर खिंच जाता है इसी प्रकार पूर्ण पुरुष के दर्श, स्पर्श और संग से मानवीय जन के समुद्र में पूर्णता का विचार हिलोरें लेने लगता है और सुविधा के साथ उसके जीवन में परिवर्तन लाता है।

मैं अपने निज अनुभव और विश्वास के प्रकाश में एक आप्त पुरुष के रूप में कहदेना चाहता हूं कि छैः या सात वर्ष के भीतर भीतर संसार में एक महान परिवर्तन आवेगा। संकल्पमय जगत में अत्यन्त परिवर्तन होगा। मानव जीवन की काया पलट हो जावेगी। उसके पश्चात् मनुष्यता और सत्यता का युग आयेगा और उस समय आने वाली जातियों के

लिए संतमत सार्वभौम धर्म होकर मानव जगत का पथ प्रदर्शन होता हुआ सौख्य और शान्ति दिलायेगा।

प्रार्थना

तू पूर्ण है तुझको पूरण मान शरणागत था हुआ।
जिन्दगी गुजरी तलाश में जो समझा था सो कह दिया॥
मौज आधीन किया है काम नहीं कुछ है मतलब अपना।
अब दया कर दे निजधाम देख लिया है जग स्वपना॥

प्रेषक—भगवानसिंह टीचर

परमदयाल फक़ीर साहब जी का पत्र पूज्य दयालस्वरूप भाई नन्दू जी महाराज के नाम।

मनुष्य बनो में-टेक-भैया तूने मेरी तारीफ़ करी
मैं हूँ कौन ? कहाँ से आया ? इसी खोज में उम्र गई। भैया....
खोज खोज में मैं यह समझा मैं था चेतन की कनी।
इस कनी में अनेक करिश्मे दुख सुख आनन्द सकल भरी॥ भै....
बुद्धि विवेक भगवान की भक्ति योग ज्ञान इससे निकली।
जिससे निकली रही उसको ढूढत अन्तमें अब विसमाद हुई॥ भै....
वह है जात मेरी बे अन्ता जब उससे मिली तब आप गई।
वह परम तत्व दयाल आधारा उसकी गोद में जाय मिली॥ भै...
आपा खोया भूला खुद को यह खोज का अन्जाम हुई।
न थी पहले न रही पीछे हो प्रगट थी विकल भई॥ भैया....
उसी दौर में हम तुम मिल गये प्रेम की साख चली।
अहसान दयाल दाता का भारी जिसने दया करी॥ भैया...
भरम अज्ञान मिटाया मेरा देकर बाँह अपनी।
यही काम तुम्हें करना होगा जीवों को कह बात नई॥ भैया....
सबही वैसे जैसा मैं हूँ भ्रम की फांस पड़ी।
जैसी कटी मेरी सबकी कटै ऐसी यही है आश मेरी॥ भैया...

सुख से जीवें जिन्दगी काटें अन्त में उसमें रली।
भूखे को रोटी प्यासे को पानी रोगी को औषध देना
निर्बल को बल अज्ञानी को ज्ञान सुख से जीवन बिताना।
कबतक पिंजर है यह मेरा जाने आप वही॥ भय्या....

जैसा मैं चाहता था दाता की अज्ञा पूर्ण न कर सका। मौज!

कर्म भोग अथवा मौज

(ले० परम दयाल फक़ीर साहब)

मौज ने दीवाना बनाया बन के दीवाना हूँ लिख रहा।
क्यों यह करता हूँ काम मैं समझ में नहीं आरहा॥

दाता दयाल महर्षि जी महाराज की पवित्र पुनीत विभूति ने अनेक पुस्तकें व लेख लिखे। मुझे अब स्मरण होता है कि एक बार उन्होंने कहा था कि फ़कीर हम सब ढकेले जा रहे हैं और इस ढकेल पन अथवा मौज आधीन हम सब कार्य करते हैं और इसी के अन्तर्गत आपने कहा कि मैं कार्य करता हूँ।

जब कौरव और पांडवों का महाभारत युद्ध हुआ तो सब दुर्योधन को कहते थे कि तुम ऐसा न करो यदि युद्ध हुआ तो उसका परिणाम अच्छा न होगा। किन्तु वह कहा करता था कि मैं जानता हूँ परन्तु कोई शक्ति मुझे ऐसा करने को विवश कर रही है। इसी नियमानुकूल मैं अपना कार्य करता हूँ और अन्य अपना कार्य करते हैं।

इस समय हमारे देश में जहाँ घरेलू झगड़े भाई भाई पुत्र पिता सास बहू व अन्य प्रकार की आपत्तियों से हम सब दुखी हो रहे हैं वहाँ विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकार के विचारों की मुठ भेड़ होकर राजनीतिक व सामाजिक अशान्ति

के बादल छा रहे हैं। पंजाब में हिन्दी और गुरु मुखी का झगड़ा और दूसरे स्थानों में दल बन्दियों का संघर्ष आदि भी कम नहीं है। जिस प्रकार यह महाशय गण व सरदार लोग अथवा अन्य बड़े बड़े नेतागण ढकेले जा रहे हैं उसी प्रकार मैं भी ढकेला जा रहा हूँ और विवश होकर लिख रहा हूं।

ज्ञान बिना सज्जनो तुम डूबौगे डूबोगे।
अक़ल गमाकर फिरते हो तुम डूबोगे डूबौगे॥
जुबान का झगड़ा है मूरखता है कुछ होश करो।
जैसी जिसकी अवस्था है तुम उसको वैसा ही समझो॥

वाणी विचारों के प्रगट करने का यंत्र है। इससे अधिक उसकी कोई महानता नहीं है। देश में जन साधारण के विचारों के परस्पर प्रगट करने के लिए एक ही भाषा देश की होनी आवश्यक है जिससे कि हम अपने विचार और भाव एक दूसरे पर प्रगट कर सकें देश काल और वस्तु के अनुसार आप में भी परिवर्तन आना चाहिये।

मैं जानता हूँ तुम न सुनौगे इस दीवाने की आवाज़ को।
सुनो या न सुनो मगर तुम बन्द कैसे करोगे हमदर्द की ज़ुबान को॥
आत्मा हूँ कुल जगत का संसार सारा मेरा ही रूप है।
माँ को कैसे तुम कहोगे कि रोकले वह अपनी आह को॥
कह रहा हूं माँ बनकर तुम इन्सान बनो इन्सान बनो।
बे फ़ायदा आपस में झगड़े करके तुम मत लड़ो॥
यह तुम्हारी दुनियां जाह हशमत इक बुलबुले के समान है।
आँख बन्द जब हो गई तब कैसे किसी से मत झगड़ो॥
माँ की पुकार सुनेगा वह जो है आधार इस कुल युग का।
तुम्हारी दशा को देख कर दिल में दर्द पैदा हो गया॥
वह मौज अपनी रहमत से बचाये तो शायद हो जाये स्लाह।

मगर ना अज्ञान ने तुमको बुरी तरह से है जकड़ो ॥
अब लिखा नहीं जाता बस इतना कहता हूँ तुम सबको।
अक़्ल करो कुछ होश करो ख्वाब की दुनियां में मत झगड़ो ॥

मुझे इन विरक्त सन्यासियों की दशा देख कर अत्यन्त खेद होता है यह सन्यासी और महात्मा संसार को शांति और सौख्य देने वाले हुआ करते थे किंतु यह स्वयं ही ऐसे मार्ग पर चल रहे हैं कि मेरी समझ में यह त्रुटि पर हैं। मौज ?

कर्म भोग अथवा मौज

(ले०—परमदयाल फ़क़ीर साहब)

जिन्दगी की तलाश मुझ को सूये ख़ामोशी ले गयी।
अहसास है अभी थोड़ा बाक़ी काम अपना कर रही ॥

जीवन बना उपरान्त बुद्धि उत्पन्न हुई। इसके लिये विवशता थी कि वह समझे कि संसार का खेल क्या है ? प्रत्येक जीवन ऐसा करने को विवश है। अनेक इस खेल के परिवर्तन से घबरा कर रोते चिल्लाते और खेद करते हैं। और कितने ही साहस से कार्य लेकर उस खेल को अपनी इच्छा के अनुकूल बनाने की चेष्टा करते हैं। और जब उनके कितने ही कार्य असफल होते हैं तो उनकी बुद्धि विवश होकर उस ओर को जाती है जहाँ उनको सुख, शांती और चैन मिले। कितनों ही को यह भी प्राप्त नहीं होती है। फिर वह विवश होकर इस खेल को किसी के आधीन समझ कर अपने आप को उस शक्ति के अर्पण करके अपने सम्पूर्ण प्रयत्नों, चिंता आदि को भूलने का उपाय करते हैं।

जिस ठाकुर सों नाहें चारा, तिस को सदा सदा नमस्कारा।

मैंने अपने जीवन में प्रत्येक प्रकार के खेल देखे और अनुभव किया अन्त में कहां ठहरा है ?

उम्र की कश्ती रवां है जिसजा लगी किनारा हो गया।
तूफ़ान आया हट गई फिर कोई और किनारा हो गया ॥

चूँकि विभिन्न धार्मिक, पांथिक अथवा अन्य सामाजिक संस्कार मस्तिष्क पर पड़े थे। और प्रत्येक धर्म, पंथ और समाज अपनी २ विधि और उपाय मानसिक और अध्यात्मिक उन्नति आदि की प्रथक २ बताती थी। इच्छा थी कि जो कुछ अनुभव का परिणाम होगा वह वर्णन कर जाऊँगा इसलिये मैंने अपने में प्रत्येक दृष्टिकोण से प्रत्येक कार्य को सत्यता, निस्वार्थ और निष्कपटता से किया और यही कारण है कि मैंने अपने जीवन का अनुभव वर्णन किया है। अब जीवन का अन्तिम समय है किसी न किसी दिन यह दृश्य, जगत, मन और आत्मा के दृष्टि से ओझल हो जावेंगे। फिर क्या होगा ? लामकां हो जायेंगे और इस लामकांनी दुनियां में भी एक दुनियां है।

हैरान होंगे सुनने वाले क्या हूं मैं कह रहा।
लामकानी दुनियां में भी है तम्बबुज हो रहा ॥
मकानी दुनियां की भी है कोई न कोई हद कहीं।
इस लामकानी दुनियां का कोई किनारा ना रहा ॥
बे अन्तर्हबे अन्त है बे अन्त है ख्याल को उसकी सिफ़त करने का चारा ना रहा ।
आदि है व जुगाद है बे किनारे की हस्ती जिसमें जाकर मैं व तू का इशारा ना रहा ॥

अलमस्त हो मस्ती में झूम झूम कर लिख रहा।
यह आलमे खामोशी है जिसमें हूँ दाखिल हो रहा ॥
क़लम छूटी हाथ से और जिस्म में आया सकून।
रूह मन दोनों का कोई अब आवशारा न रहा ॥

मरहवा ऐ ज़ात मुर्शिद तूने दिया था ख्याल।
इस ख्याल के लेने की वजह से अब फ़क़ीराना रहा॥

संसार में इस फ़ानी फ़क़ीरचंद के मिलने वालो क्या अलविदा कह दूं ? नहीं ! अभी मौज मालिक या मौज ख़ामोशी ?

मौज ख़ामोशी की हस्ती की काम लेना चाहती है।
इस संसार वालों को कुछ कहना चाहती है॥

क्या ?

यह जहाँ है प्रकृति का इस प्रकृति के राज़ को समझो।
इस जहां में आये हो जीओ और जीने दो॥
जिस ख़ुदा के नाम पर तुमने बनाये हैं मज़हब।
उस ख़ुदा के रूप को तुम मेरी ज़ात से समझो॥
सब इन्सान एक हैं और एक की हैं हज़ारों शक्लें।
भरम के बस आन कर के क्यों हो तुम झगड़ो॥
इन्सान बनो इन्सान बनो तुम भाई इन्सान बनो -
त्यागदो मेरा तेरा पना सुख से तुम जीओ॥
कर्म के भाग वश मैं दे चला हूं सार भेद।
इस सार भेद को ऐ इन्सानो ? जगत में फैलाइयो॥
वक्त नाज़ुक आरहा है काल का चक्कर चले।
हो सके तो अपने जैसों को प्रेम के अंग लगाइयो॥
मुझको भेजा इस ख़ामोशी की हस्ती ने बनाकर फ़क़ीर।
कह चला बात जा अनुभव में मेरे आइयो॥
संत मत में आके अब हम हो रहे हैं ला मकां।
इन्सान बनो की आवाज़ है दिल में अपने बिठाइयो॥
Peace to the humanity. शांति, शांति, शांति।

परमदयाल फ़क़ीर जी का पत्र सेठ दुर्गादास जी के नाम

प्रिय दुर्गियां ? आज आपका मन में विचार उत्पन्न हुआ। क्यों हुआ ? संस्कार अथवा मौज। क्या पता कि मेरा और आपका सम्बन्ध पिछले जन्मों का हो मैं नहीं कह सकता हूं। दातादयाल मुझे कहा करते थे फ़क़ीर मैं पिछले जन्म में गौतम बुद्ध था और तुम मेरे भिक्षु थे।

तुम्हारी मेरी भेट बसरे में सन् १९१७ में हुई थी कुछ मित्र वहां और भी थे। जीवन में उस परमतत्व सर्वाधार के मिलने की अभिलाषा थी उस समय आप सज्जन मुझसे पूछा करते थे मास्टर जी हमें भी कुछ बताओ ? तो मैं उत्तर दिया करता था कि मैं कुछ नहीं जानता। यदि कुछ जीवन में मिला तो बता जाऊँगा। प्रिय मेरे जीवन के अनुभव ने जो कुछ भी मुझे बताया वह मैं बिना लगाव लपेट के स्पष्ट शब्दों में निर्भय होकर वर्णन कर चला हूँ।

मेरे लघु भ्राता राय साहब सुरेन्द्रनाथ ने मेरे शारीरिक पुत्र शाह पदम जंग की भ्रात प्रेम के अंतर्गत जो सहायता शिक्षा में की है उसका ऋण उतर रहा है उतर जायगा। परमार्थिक दृष्टि कोण से यदि आपकी स्थिति आज्ञा दे तो दहलो में दातादयाल जी का स्टैचू जो मेरे निवास स्थान पर है निम्नलिखित शब्दों के साथ लगवा देना। अवसर मिले तो ऐसा करना आप पर कोई भार नहीं है।

(1) Be "man" "Entire and whole" and everything"

(2) Here is a statue of a Perfect man Data yal maharishi Snivebrat Lal ji maharai

verman M. A. who was the liberator of self from the effects of body, mind and Soul—

(Faqir)

यह विचार केवल प्रेम भाव और विश्वास के अन्तर्गत नहीं है वरन् वास्तविकता और सत्यता के विचार से है क्योंकि उनकी शिक्षा जिसको मैं अपने जीवन में अधिक समय तक न समझ सका ने मुझको यह विश्वास दिला दिया है कि शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बोध भान का साक्षी एक और ही तत्व है और वह इस त्रिगुणात्मक जगत में फँसकर दुख सुख आनन्द, प्रसन्नता, चिन्ता, भय, ज्ञान, अज्ञान के झूले में झूलता रहता पूर्ण पुरुष के सतसंग द्वारा सुरत शब्द योग के साधन से वह इस चक्र से निकलकर स्वतंत्र हो जाता है। मेरा यही हाल हुआ इसके अतिरिक्त इस त्रिगुणात्मक जगत में इस प्रकृति के नियमानुकूल जीवन बिताया जाय तो मानाव जीव श्रेष्ठतर रह सकता है। इसलिए यह दोनों बोर्ड वहाँ लगवा देना। मेरा यह शरीर कब तक है मौज जाने परन्तु अब विस्माद अवस्था रहती है क्या पता यह मस्तिष्क की गड़बड़ है या आध्यात्म आदि है। जहां तक तुम्हारी प्रकृति का प्रश्न है दाता दयाल का शब्द है जिसकी पहली कड़ी यह है।

"दिल लगाना था कि सारी दिल्लगी जाती रही"

दिल का लगाना ही नाम का जाप है। अन्तर भी और बाहर भी जब तक जीवन है कार्य करो कार्य करो कार्य करो।

योग, भक्ति, ज्ञान, जाप और कर्म क्या हैं। नाम ही का तो जाप है विशेष क्या लिखें प्रसन्न रहो।

हुआ है दिल से तू खुश हाल और खुश दिल रहै।
जिन्दगी सुख से गुजारे और साहिबे दिल रहै।

इस बात का हो ध्यान हरदम तेल जैसे तिल रहै ॥
राधास्वामी नाम तेरा अपना ही नाम सुन ।
भूलना इसको नहीं यह बात तेरे दिल रहै ।

मुझे दाता ने समयानुकूल शिक्षा में परिवर्तन करने का आदेश दिया था अपनी बुद्धि के अनुसार जो समझा वह कर दिया आगे मौज ?

मेरा विचार है कि भविष्य में आने वाला युग मेरे इन विचारों को आदर व मान की दृष्टि से देखेगा क्योंकि इसमें रोचकता और भयानकता नहीं केवल यथार्थ है। समझ बूझ वालों के लिए यह विचार अत्यन्त लाभदायक होंगे।

ग़ज़ल पीरेमुग़ां साहब

चुप हुये जब आप उक़्दा खुल गया इसरार का ।
दिल में मेरे आप मुख़फ़ी राज़ था दीदार का ॥
दिल में दिलबर की जगह है अब ज़ुबां पर वह नहीं ।
वह है न मक़सद है कभी गुफ़्तार का पिन्दार का ॥
फ़िलसफ़ी क्या समझेंगे और मन्तगी जानें क्या ।
इनमें जज़्बा ही नहीं है तालबे दीदार का ॥
दिल के परदों में घुसे जब कोई तब आवे नज़र ।
वाहमाँ है सबको वहदत के दरो दीवार का ॥।
बन्द कर चश्मो ज़ुबाँओ गोश को अपने अज़ीज़ ।
जान लेगा खुद व खुद यह ढंग है हुशियार का ॥

शब्द दयालस्वरूप नन्दू भाई जी महाराज

मुंशिया सोच करे क्यों मन में ? टेक
समरथ सतगुरु दीनदयाल रक्षक घर और बन में ।

निरखूँ छिन छिन गुरु की मूरति अपने मन दर्पन में ॥
तिलके भीतर गुरू विराजे लागे चित दर्शन में ।
नैनों में तेरे शामली मूरति देखले घट दर्पन में ॥
सोवत जागत तारी लागे रहौ तुम उसी जतन में ॥
पल पल सोधौ नाम रसायन सुमिरन ध्यान भजन में ।
बचन विलास पाट और पूजा सब हो श्रवण मनन में ।
सो उर नाम तू भी धारले लड़ले काल के रन में ॥
किस की सोच करे नर बौरे गुरु प्रगट निज जन में ।
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी गुरू मिले याही पन में ॥
अगर ख्याल ले मुश्किल के तू न घबराये ।
तो पेश आ नहीं सकती तुझे कोई मुश्किल ॥
अमल का जौक नहीं है अगर तबियत में ।
तौ इश्तया के निज़ाम अमल है ला हासिल ।
अगर है अस्ल में अहसासे ज़िन्दगी तुझ को ॥
तो फिर ज़माने में बन कर दिखा किसी क़ाबिल ॥

सुख किस में है

(ले० दयालस्वरूप नन्दू भाई)

कोई कहता है कि सुख धन सम्पति में है और वह परिश्रम करके धन सम्पति इकट्ठी करता रहता है किन्तु सुख नहीं मिलता। यदि धन सम्पति में सुख होता तो संसार के करोड़ पती और लख पती सबसे अधिक सुखी होते परन्तु यह सुखी नहीं हैं। बहुधा धनाढ्य दुखों से घबराकर धन सम्पति के होते हुये आत्मघात कर बैठते हैं। इससे सिद्ध है कि वह सुखी नहीं हैं।

कोई कहता है कि संतान और स्त्री में सुख है परन्तु प्राणी इनके कारण भी अत्यन्त चिन्तित और दुखी देखे गये हैं

और घर छोड़ कर भाग जाते हैं। यदि इनमें सुख होता तो इस भग्गधड़ की नौबत क्यों आती ?

कोई कहता है कि विद्या बुद्धि में सुख है। किंतु अनुभव बताता है कि विद्यावान और बुद्धिमान समुदाय सबसे अधिक दुखी प्रतीत होता है और इस अहङ्कार मय सभ्यता के युग ने संसार को अग्नि की भट्टी बना रक्खा है जिसमें प्राणी ईंधन की भांति जल भुन कर भस्म हो रहे हैं। यदि विद्या बुद्धि में सुख होता तो सभ्य देशों की दशा विपरीत होती उनमें सबसे अधिक अशांति और बेचैनी है।

कोई कहता है कि इन्द्रियों के भोग विलास में सुख है परन्तु यह नहीं विचार करो कि इन्द्रियां स्वयं जड़ पदार्थ हैं इनमें सुख किस प्रकार हो सकता है ? यह अपने जीवन के लिए किसी अन्य शक्ति की आश्रित हैं। इनकी शक्ति देने वाली धार हमारे मस्तिष्क की ओर से आती है तब इनका संचालन होता है। यदि धार न आए तो यह बे जान हो जांय, सो जांय और शून्य पड़ जाँय। धार नस नाड़ियों द्वारा इनमें उतरती है तब यह कार्य करने के योग्य होती हैं यदि धार न आए अथवा वह ऊपर की ओर खिंच जाय तो ये निर्जीव हो जाती हैं। मुट्ठी बन्द अथवा खुले हुए हाथ की कलाई में कपड़ा बांध दो। यदि वह खुला है तो मुट्ठी न बाँध सकेगा और यदि मुट्ठी बँधी हुई है तो खुलन सकेगी उसे कर देखो। जांच पड़ताल करलो। आंख, कान नाक चर्म आदि सब की यही दशा है। फिर इनमें सुख कहाँ ? सुख भोगने की शक्ति कहाँ ? उदाहरण के रूप में जिभ्या पर विचार करो। जिभ्या स्वाद लेती है, मिठाई खाकर स्वाद लेती है परन्तु कब तक ? जब तक कि उसमें ऊपर से धार आती रहती है। बुखार आया, धार तनिक ऊपर खिंची। अब वही मिष्ठान

कड़वा प्रतीत होने लगता है। मूर्छा आई, लाख जिभ्या पर लड्डू पेड़े रक्खो क्या उसे स्वाद मिलता है ? कदापि नहीं। निद्रा अवस्था में भी यही प्रतीत होता है। क्यों कि स्वाद लेने वाली धार तो चली गई स्वाद ले तो कौन ले ? यही दशा हमारी तुम्हारी और सब की इन्द्रियों की है इसलिये उनमें सुख नहीं है।

कोई कहता है कि इन्द्रियों में सुख नहीं तो न सही मन में तो सुख होगा ? परन्तु यह विचार भी सही नहीं है। कौन सा मन है जो सङ्कल्प विकल्प अथवा द्वंद विचारों की चालों से रिक्त पाया जाता है ? इन्द्रियों के जाल में फँसे हुए प्राणी इतने दुखी नहीं होते जितने दुखी मन के गोरख धन्धों में फँसे हुए रहते हैं। यदि स्वयं दुखों का ताना बाना तनकर इसमें उलझ जाता है और रात दिन शोर मचाया करता है। इसकी समझ प्रत्येक प्राणी को रहती है। संत इस मन को भी जड़ पदार्थ बताते हैं यह भी किसी ऊँची धार के आने से संचालन करता है। जब तक यह धार विद्यमान है तब तक वह बन्दर की भाँति कूदता फाँदता है और जहाँ धार का आना बन्द हो गया फिर यह अपनी चौकड़ी भूल जाता है और मृत्यु तुल्य हो जाता है इससे स्पष्ट है कि मन में न सुख है और न वह सुख की वस्तु है। सुख का भंडार कहीं और ही है और सुख कोई और ही वस्तु है।

इस शरीर में सुख कहां, नहिं वह सुख की खान।
जड़ शरीर है जड़ सदा, जड़ता के अनुमान॥
इन्द्री में सुख नहिं मिले, अपने मन में जान।
इन्द्री धार आधीन है, धार यह सुरत रहान॥
मन के मते न चालिए मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार हैं, सो साधू कोई एक॥

स्थूल देह में दस इन्द्रियां हैं। इनमें से पाँच ज्ञान

इन्द्रियाँ हैं कान, चर्म, आँख, जिभ्या, नाक और पाँच कर्म इन्द्रियां हैं हाथ, पांव, जिभ्या (वाणी), गुदा और मूत्र इन्द्री। ज्ञान और कर्म दोनों का परस्पर सम्बन्ध है।

उदाहरणतः ज्ञान इन्द्रियां	कर्म इन्द्रियां
१–कान शब्द को सुनता है।	१–और पांव शब्द की ओर ले जाता है।
२–चर्म छूता है।	२–और हाथ चर्म की वस्तु को पकड़ता है।
३–आंख रूप को देखती है।	३–और जिभ्या (वाणी) उसे वर्णन करती है।
४-जिभ्या(स्वाद)रस को चखती है।	४–और मूत्र की इन्द्री उसे निकालती है।
५–नासिका गंध या बू को सूँघती है।	५-गुदा इन्द्री उस गंध को निकालती है।

यह सम्पूर्ण आंतरिक धार के आश्रित रहती हैं। धार न होतो बे-काम है। धार ने इनको ज्ञान और कर्म का यंत्र बना रक्खा है।

सुख सूक्ष्म शरीर में भी नहीं है। और न सुख सूक्ष्म शरीर की सूक्ष्म इन्द्रियों में है। सूक्ष्म शरीर की चार सूक्ष्म इन्द्रियां हैं जिनको अंतःकरण अर्थात् आंतरिक बोध भान कहते हैं वह १– चित्त २–मन ३– बुद्धि ४–अहंकार हैं।

(१) चित्त चिंतन करता है (२) मन-मनन करता है और संकल्प विकल्प उठाता है (३) बुद्धि निर्णय करती है (४) अहंकार बुद्धि के निर्णय को दृढ़ करता है। यह भी धारके आश्रित हैं।

जैसे ज्ञान और कर्म इन्द्रियों के कार्य हैं वैसे ही इनके भी कार्य हैं। सोचो। जब इनके कर्म अलग अलग प्रकृति में नियत हैं तो फिर सुख इनमें से किसी का कर्तव्य नहीं हुआ। प्रश्न किया जा सकता है कि फिर सुख कहां है ?

उत्तर दिया जायगा कि यदि सूक्ष्म देह और स्थूल देह को सुख से सम्बंध नहीं है तो फिर कारण देह को उससे सम्बंध होगा। कोई कोई व्यक्ति ऐसा परिणाम निकालेगा। किन्तु शरीर तो शरीर ही है चाहे स्थूल हो या कारण या सूक्ष्म उनके बीच में सूक्ष्म और स्थूल का अन्तर है इन तीनों में से किसी को सुख से सम्बंध नहीं है। इनको तुम सुख दुख के पात्र अथवा यंत्र कह सकते हो। ऐसा कहने में कोई हानि नहीं है। किन्तु इन में सुख स्वयं कहा है और कैसे हो सकता है। इस सुख और सुख भोगने वाले का पता लेना आवश्यक है। यदि प्रश्न करोगे तो बतलादेंगे समझोगे तो समझादेंगे।

अनमोल वचन

(ले० परमदयाल महर्षि जी महाराज)

१—जबतक तुम सांसारिक वासनाओं पर अधिकार नहीं पाते तब तक प्रभू का साक्षात्कार दुर्लभ है।

२—जो प्राणी मालिक को भूलकर अन्य इच्छाओं में प्रसन्नता की खोज करता है उसकी समस्त प्रसन्नताओं का परिणाम कष्ट औरक्लेश हो जाता है।

जिसको मालिक की भक्ति में व भजन की उत्कट इच्छा

नहीं उत्पन्न होती उसे अन्य कार्यों का परिणाम भयानक हो जाता है और जिसको मालिक से सच्चा प्रेम है मालिक उसके प्रत्येक आपत्ति और कष्ट से बचा लेता है।

३—यह सब जानते हैं कि मनुष्य बिना भोजन के भी जीवित रह सकता है परन्तु यह नही जानते कि जो प्राणी अपने मन को साधू, संतों में संलग्न नहीं करता उसका मन तो नष्ट ही हो जाता है और वह पापों में ही डूबता हुआ चला जाता है।

४—अभ्यासी का कर्तव्य है कि वह कम आहार करे और कम बात चीत करे और सांसारिक कार्य करते हुये अपने आपको अलग थलग रखे। सोते, जागते उठते बैठते मालिक का ही ध्यान रहे।

५—संसार में बुद्धिमान प्राणी वह है जो संसार के सम्पूर्ण कार्यों को मालिक पर छोड़ देता है और मालिक की इच्छा को ही अपना इष्ट बना लेता है।

६—यदि प्राणी दुख सुख की चिंता से ऊपर आजाय तो आकाश की ऊँचाई भी उसके पांवों के नीचे रहेगी।

७—यदि प्राणी लोभ, लालच को छोड़ दे तो उसका दर्जा महाराजाओं से भी ऊँचा रहेगा। क्योंकि संतोष ही उसका सिर ऊँचा रख सकता है।

चेतावनी

दुनियां भरम भूल बौराई ।
आतम राम सकल घट भीतर, जाकी सुध न पाई ॥
मथुरा काशी जांय द्वारिका, अरसठ तीरथ न्हावै ।
सतगुरु बिन सोधा नहिं कोई, फिर फिर गोता खावै ॥
चेतन मूरत जड़ को सेवै, बड़ा थूल मत गैला ।
देह-अचार किया कहा होई, भीतर है मन मैला ॥
जप-तप-संजम काया-कसनी, सांख्य जोग ब्रत दाना ।
यातें नहीं ब्रह्म से मेला, गुनहर करम बँधाना ॥
बकता हवै हवै कथा सुनावै, श्रोता सुनघर आवै ।
ज्ञान-ध्यान की समझ न कोई, कह सुन जनम गँवावै ॥
जन दरिया यह बड़ा अचम्भा, कहे न समझे कोई ।
भड़े पूँछ गहि सागर लांघै, निश्चय डूबै सोई ॥

काम बली सब के सिर में जिन देव अदेव सभी भरमाये ।
ब्रह्मा शिव विशनू व्यास पराशर काम के लहरे सभी ढकाये ॥
काम ने मार लियौ भस्मासुर काम ने रावण आदि खपाये ।
काम बली जब खडग लियौ कोई ज्ञान को ढाल से संत बचाये ॥

विषय सूची

संख्या	विषय	लेखक	पृष्ठ
१	विषय सूची	....	१
२	हमारी बात	.... मैनेजर	२
३	प्रार्थना	.... दातादयाल	३
४	सतसंग	... परमदयाल फ़क़ीरसाहब	५
५	रती सुन्दरी की कहानी	(ले० महर्षि जी महाराज)	२५
६	शब्द दयाल स्वरूप नन्दूभाई जी महाराज		३३
७	कर्म भोग अथवा मौज	(परमदयाल फ़क़ीर साहब)	३५
८	,, ,,	,, ,,	३७
९	,, ,,	,, ,,	४०
१०	,, ,,	,, ...	४२
११	परमदयाल फ़क़ीर साहब का पत्र पं० बलिराम हकीम फीरोज़पुर के नाम		४६
१२	कर्म भोग अथवा मौज	ले० परमदयाल फ़क़ीर साहब	४८
१३	,,	,, ,, ,,	५२
१४	,,	,, ,, ...	५४
१५	ग़ज़ल पीरेमुग़ां साहब		५६
१६	एकाग्रता और एकान्त	(ले० महर्षि जी महाराज)	६०
१७	परमदयाल फ़क़ीर साहब का पत्र		६७
१८	वेदान्त और वेदान्ती	(ले० दातादयाल महर्षि जी)	६९
१९	शब्द और कबीर के दोहे	....	७२
२०	दातादयाल जी महाराज का पत्र परमदयाल फ़क़ीर साहब के नाम		७३

—हमारी बात—

जाकी साँची बात है वाका साँचा खे
आठ पहर चौंसठ घड़ी
सतगुरू की

हो गया है जिसके लिए क्षमा प्रार्थी हैं। यह हमारे छटे वर्ष का प्रथम विशेषांक है। हमने गत मास प्रेमी पाठक गणों से प्रार्थना की थी कि यदि पत्रिका न मंगवानी चाहें तो हमको डाक द्वारा सूचना दे दें जिससे कि हमारे कार्यालय को सुविधा हो जाय। परन्तु अभी तक कोई ऐसी सूचना इस सम्बन्ध में नहीं मिली। ऐसी दशा में हम बड़े असमंजस में हैं कि उन महानुभावों को जिनका गत वर्ष का वार्षिक मूल्य अभी तक नहीं आया है पत्रिका भेजें या न भेजें। ऐसी दशा में हमें फिर भी पत्रिका उन महानुभावों को भेजनी पड़ेगी जिनकी इधर रुचि है। बी० पी० से इस कारण नहीं भेजना चाहते कि व्यर्थ दस बारह आने की कार्यालय को हानि पहुँचती है। इसलिए प्रेमी पाठकगणों से प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक मूल्य गत वर्ष तथा इस वर्ष का भेजकर इस कार्यालय को कृतार्थ करेंगे और अपने प्रेम का परिचय देंगे। हमें उनसे यह भी निवेदन करना है कि यदि वह दो दो नवीन ग्राहक बनाकर इसका घर घर में प्रचार करें तो हम समय की शिक्षा के अनुकूल जो कि प्रति मास इस पत्रिका में प्रकाशित होती है आपत्ति और क्लेश सेबच सकते हैं। नई देहली बिरला मन्दिर के सामने दशहरे पर जो सतसंग हुआ था उसे देहली वाले पुस्तकीय रूप में प्रथक प्रकाशित करेंगे। फिर भी हम उसका सारांश संक्षेप में ऊपर नीचे आप महानुभाव की सेवा में प्रस्तुत करते हैं

शमा रोशन हो गई परवाने आये बेशुमार।
गुल खिला बुलबुल के नग़मे सुन लिये सद सद हज़ार॥

वह क्या नग़मे सुने? वह कौनसी बात उन्होंने ऐसी बर
जिससे हमें सुख शान्ति मिले? वह कहते थे।

ख़ुश रहो और हो ख़ुशी की ज़िन्दगी।
ख़ुश दिली हीं है ख़ुदा की बन्दगी॥

——

सेठ दामोदरदास व सेवाराम को क्रियात्मक रूप में परमदयाल फ़क़ीर साहब का सत्संग

मैं अधिकांश विसमाधि अवस्था में रहता हूं। नीचे आने को जी नहीं चाहता। इस कारण सतसंग का कार्य भी संक्षेप में कर दिया है। नियत समय के अतिरिक्त नहीं चाहता कि कोई मेरे पास आवे।

संसार कर्म क्षेत्र है। मौज की रचना में कर्म भोग के अन्तरगत कार्य करने के लिये विवश हो जाता हूँ। अकस्मात सेठ दामोदरदास और सेवाराम जी उज्जैन से पधारे सतसंग की इच्छा प्रगट की। गले पड़ा ढोल बजाना पड़ा। चार दिन तक समाधि के पश्चात् सतसंग कराया। जो कुछ कहा अथवा मौज ने कहलवाया संक्षेप में नोट करता गया जिससे कि उनको बार बार मेरे पास आने की आवश्यकता न पड़े। और वह समयानुसार इसको पढ़कर लाभ उठाते रहें।

प्रथम सतसंग

प्रियवर मेरी वाणी को ध्यान पूर्वक सुनो, बात को समझो और अपना कार्य बनाओ। राम और लक्ष्मण की भाँति तुम दोनों भाई आपस में प्रेम के अन्तर्गत सम्बन्धित हो। तुम्हें किसी वस्तु की खोज थी। उसको प्राप्त करने के लिये जगह जगह की ठोकरें खाईं परन्तु लक्ष्य हाथ न आया। अनुभव के पश्चात् चार पांच वर्ष से तुम मेरे पास आते रहते हो। मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूं कि जब तक गुरु सेवा द्वारा गुरू को प्रसन्न नहीं कर लिया जाता कोई भी व्यक्ति प्रसन्नता, सुख, चैन, आनन्द ज्ञान अथवा शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकता।

इसमें कोई संदेह नहीं कि तुमने हृदय से श्रद्धा और सच्चे

भाव से मेरी पुत्री के विवाह के उत्सव पर भोजन आदि का प्रबन्ध किया था और अपने कार्य को पूर्ण रूपेण संतोषजनक सम्पूर्ण किया था। मैं आपके सेवा भाव का बदला नहीं दे सकता। आप कदाचित यह विचार करते हो कि आपकी सेवा गुरू को प्रसन्न करना था क्योंकि वाणी में स्थान स्थान पर आया है।

गुरु को खुश करना है भारी, गुरु राज़ी तो कर्त्ता राज़ी,
काल कर्म की चले न बाज़ी,

कह दामोदरियां क्या मैं असत्य कह रहा हूं ?

दामोदरदास–महाराज आप सत्य कह रहे हैं। वाणी ऐसा ही कहती है। और इसी विचार से बुरे भले रूप में जो तुच्छ सेवा हम से बन सकी थी की थी।

फ़क़ीर–बच्चो ! संसार ने वाणी को नहीं समझा। सन्त की वाणी को केवल सन्त ही समझ सकता है। जन साधारण वास्तावक रहस्य को समझने से सदैव वंचित रहे हैं। अब मैं अपना निज अनुभव जो मेरे जीवन की दौड़ धूप का परिणाम है और जिसको मैंने अनेक बार मौखिक और लेखों द्वारा व्यक्त किया है अब फिर मैं दुहराता हूँ। प्रश्न किया जायगा गुरु कौन है ? मेरे निज अनुभवों में यह आया है कि प्राणी की सहायता करने वाला सतगुरु एक शक्ति है। जो प्रत्येक प्राणी के अनेक विश्वास, धारण करके उसकी सहायता करता रहता है। इसी बात का बाबा सांवले शाह भी अनेक बार वर्णन किया करते थे। और वह शक्ति प्रत्येक प्राणी के अपने अन्तर उसके अपने मन और आत्मा में रहती है। दूसरे शब्दों में वह शरीर, मन और आत्मा का आधार है। इसलिए मुख्य और वास्तविक गुरु सेवा यह है कि प्राणी अपने मन और आत्मा को प्रत्येक समय प्रसन्न, अचिंत, निर्भय, निश्चिंत, और शान्त रक्खे। स्मरण रक्खो यदि तुम्हारा सतगुरु जो तुम्हारे अपने अन्तर रहता है प्रसन्न,

निश्चिंत, अचिंत और शान्त है तो काल और माया अथवा कर्त्ता पुरुष तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। इस उपाय से न केवल तुम प्रसन्न, अचिंत, निश्चिंत रह सकोगे वरन् संकल्प शक्ति के अनुसार तुम्हारा संसार ही बदल जावेगा। और तुम्हें संसार में प्रत्येक स्थान पर शान्ति प्रसन्नता, प्रफुल्लता का राज्य दृष्टिगोचर होने लगेगा। कहो बात समझ में आई या नहीं? यदि नहीं आई तो बार २ विचार करके बात को समझो।

मेरी वाणी को सुनकर सेवाराम मस्ती में आकर भागने लगा और प्रसन्नता के कारण अपना सिर मेरे चरणों में रख दिया। मैंने उसके सिर पर हाथ फेरा और कहा पुत्र! वाह्यपूर्ण पुरुष का सतसंग प्राणी को निश्चय करा देता है कि ऐ मानव! सब कुछ तेरे अपने पास और अन्त में है। बाहर भटकने की आवश्यकता नहीं। इसलिए सतपुरुष राधास्वामी दयाल ने अनेक बार वर्णन किया है।

पूरा सतगुरु खोजरी तेरे भले की कहूँ।
घर में घर दिखलाय दे सोई पुरुष सुजान॥

द्वितीय सतसंग

चूँ कि तुम्हारा समय आगया था। माँगो और मिलेगा के नियमानुसार मौज तुमको मेरे पास ले आई। प्रसन्नता है कि मुझे आप जैसे जिज्ञासुओं के दर्शन प्राप्त हुये। कल मैंने आपको समझाया था कि गुरू को प्रसन्न करने का मुख्य तात्पर्य क्या है। अब मैं इसी क्रम में विशेष व्याख्या करता हूं। वास्तव में यह कार्य बहुत कठिन है। यदि किसी पूर्ण पुरुष के सतसंग से रहस्य प्राप्त हो जाय तो यह कठिन कार्य सुगम हो जाता है। फिर ध्यान दो। यथांत् में सतगुरु तुम्हारा अपना आत्मा अथवा अपना

स्वरूप है या तुम स्वयं हो। उसका सदैव अपने आप में आनन्द मय, प्रसन्न, शान्त और निर्भान्त रहना है वास्तविक में गुरू सेवा है। यह दशा केवल मौखिक जमा खर्च की बातों से नहीं आ सकती। वाचक ज्ञान इसको नहीं ला सकता। प्रयत्न करने पर भी कर्म की भूमि प्राणी बारबार गिरता रहता है। इस दशा को प्राप्त करने के लिये साधन और अभ्यास की आवश्यकता है और साथ ही इस बात की कि वह साधन और अभ्यास किसी पूर्ण पुरुष और रहस्य ज्ञाता से प्राप्त किया जावे।

दामोदरदासः—वह साधन और अभ्यास क्या वस्तु है?

फ़क़ीर—प्रथम बात यह है द्वेष, ईर्षा, पक्षपात, घृणा, हठ धर्मी और द्वई के भावों को चाहे वह घरेलू जीवन के कारण से हों या देशीय, धार्मिक और सामाजिक जीवन के कारण से हों अधिकार करो। इसके लिए आंख कान और जिह्वा पर बंद लगाने की आवश्यकता है। बन्द लगाने का अर्थ यह है कि किसी की बुराई मत सुनो। किसी का अवगुण न देखो। यदि दृष्टि में आजाय तो उसको प्रगट न करो। यह प्रारम्भिक शिक्षा है।

दामोदर दास—यह असम्भव है।

फ़क़ीर—घबरा गये। सुनो यह बहुत सुगम है। यदि वास्तव पूर्ण पुरुष मिल जाय।

दामोदरदास-आप पूर्ण पुरुष हैं। मैंने आपकी शरण ली है।

फ़क़ीर—प्रियवर जो कुछ समझ तुमने मेरे लेखों और सत्संग से प्राप्त की है क्या वह समझ तुमको इस दोष से दूर नहीं करती?

दामोदरदास—उस समझ से मुझे लाभ तो अत्यन्त हुआ है। धार्मिक द्वेष जाता रहा, सामाजिक, सम्प्रदायक और दांपिक द्वेष भी दूर हो गया परन्तु घरेलू जीवन में कभी कभी द्वेष और ईर्षा का आक्रमण हो जाता है।

फ़क़ीर—घरेलू द्वेष, ईर्षा का कारण यह है कि अभी तुमने पूर्ण रूपेण निष्काम करने की टेव नहीं डाली। तुम सेठ हो व्यवसाय भली प्रकार चलता है रुपये पैसे के लैन देन के कारण मेर तेर बनी रहती है। अब तुम यह समझ लो कि यह कार्य तुम्हारा नहीं है। मौज का है। अपना कुछ न समझते हुए विदेह राजा जनक की भाँति कार्य करो। संसार अथवा विचार के चक्र को समझकर यदि कार्य करोगे तो घरेलू द्वेष और ईर्षा भी जाती रहेगी। यदि प्राणी अपने ध्यान को इष्ट की ओर लगा रक्खे तो द्वेष, ईर्षा, छल, कपट, घृणा आदि के भयङ्कर भाव चाहे वह जीवन की किसी श्रेणी से सम्बन्ध रखते हों सुगमता से चले जाते हैं। स्मरण रहे वह इष्ट वाह्य गुरू नहीं है वरन् वह तुम्हारा अपना आपा है। यदि मुझको (फ़क़ीरचन्द को) गुरू इष्ट मानोगे तो कार्य नहीं बनेगा। मेरा शरीर चले जाने पर दुःख होगा। किसी ने मेरी निन्दा की तो क्रोध आ जावेगा। प्रशंसा कर दी तो प्रसन्नता मिलेगी। यदि मैंने कुछ मांग लिया और किसी कारण वश तुम न दे सके तो दुख होगा। इसलिए ऐ दामोदर ! उस इष्ट को जो कि तेरा अपना आपा है अपना रूप है उसे ध्यान का केन्द्र बनाओ। अब बात का दूसरा अंग लो। दो चार प्राणी तुम्हारे साथ आये हैं मैंने उनसे प्रश्न किया क्यों आये हो ? उन्होंने उत्तर दिया दर्शन करने के लिए। मैंने पूछा दर्शन से क्या मिलता है ? उन्होंने बताया प्रसन्नता। क्यों यही बात है न ?

दामोदरदास—जी हाँ उन्होंने यही कहा है।

फ़क़ीर—अब सोचो ! एक स्त्री ने किसी बालक को अपना पुत्र माना हुआ है। अथवा एक स्त्री ने किसी पुरुष को अपना पति माना हुआ है। दोनों को अपने विचार, विश्वास अथवा मानने के कारण प्रसन्नता मिलती है। संसार में और भी बालक हैं और भी पुरुष हैं। उनसे प्रसन्नता क्यों नहीं मिलती। इससे

सिद्ध होता है कि प्रसन्नता वास्तविक में उन स्त्रियों के अपने भाव विचार या मानने में हैं किसी अन्य में नहीं। इसलिए मुख्यवस्तु प्राणी का अपना भाव, विश्वास और आपा है। अपने सम्बन्ध में विचार करो। तुमने शान्ति और सत्यता की खोज में कितने पापड़ बेले। सुनो! किसी महात्मा से पहले तुम प्रेम करते थे उनकी संगत में प्रसन्नता मिलती थी। क्या अब भी वही बात है। अब मुझसे प्रेम करते हो। आनन्द मिलता है। कल को इसका भी क्या भरोसा। प्रियवर! बात यह है कि जो प्रसन्नता तुमको मिलती है वह तुम्हारे अपने विश्वास और भाव में है। न प्रसन्नता उस महात्मा में न मुझमें है। चूँकि उस प्रसन्नता में अज्ञान था। जब उस महात्मा में त्रुटि दृष्टिगोचर हुई विश्वास टूट गया और दुखी हो गये। ऐ दामोदर! जो विश्वास अज्ञान वश किया जाता है वह किसी न किसी समय टूट जाता है। इसीलिये राधास्वामी मत में पूरे गुरू अथवा पूर्ण पुरुष या सतसंग मुख्य रक्खा गया है। वह प्राणी को सतसंग द्वारा रहस्य और भेद देकर उसके अज्ञान को समाप्त कर देता है। चूँकि वह स्वयं निज स्वरूप में रहता है इसलिये उसकी क्रियात्मक जीवन और उसकी धीरे धीरे प्राणी को अन्तरमुखी बनाकर शान्ति बना देती है। मैं जो बार बार पुकार करता हूं कि प्रत्येक प्राणी गुरुपद का अधिकारी नहीं है उसका कारण यही है चूँकि गुरुओं की अधिक संख्या किसी न किसी स्वार्थ को लेते हुए होती है। इसलिए उसका क्रियात्मक जीवन प्राणी को शान्ति और पूर्णता नहीं दिला सकता।

कल से तुम मेरे घर में ठहरे हुए हो। क्या तुमने प्रतीत नहीं किया कि मेरे घर का वायुमंडल शान्तिजनक है। यद्यपि यह एक गृहस्थी का घर है।

दामोदरदास—सत्य वाक्य महाराज।

तृतीय सतसंग

दामोदरदास ! आज प्रातःकाल ३ बजे से ७ बजे तक मैं अपने अन्तर लगातार उस परम तत्व, मालिक, सर्वाधार के प्रेम में अपने आपको लय करता रहा। तुम उसे सुरत कहो, आत्मा कहो, अथवा अपना आपा कहो। अब शरीर में आकर शारीरिक बन गया। तुमको अपने सम्मुख बैठे देखा।

मैं सत्य कहता हूँ कि जो कुछ मैंने अब तक कहा या लिखा वह मेरी आप बीती है। मांग तांग की बात मेरे जीवन का आदर्श नहीं रहा। सचाई यह है कि जो मैं हूँ वही संसार के प्राणी मात्र हैं। और जिस प्रकार प्रत्येक जीवन के लिए मृत्यु अनिवार्य है इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी के आत्म तत्व का अपने निज स्वरूप अथवा परम तत्व में लौट जाना भी एक अनिवार्य और प्राकृतिक सिद्धान्त है। किन्तु यह कार्य समय के पश्चात परिपूर्ण हो सकता है प्रत्येक प्राणी को परम तत्व में लय होने के लिए जो यात्रा करनी पड़ती है अथवा जीवन के अनुभवों और सोपानों को पार करना पड़ता है कि विभिन्न धर्मों में उनके भिन्न-भिन्न नाम आते हैं। ऋषियों, मुनियों, सन्तों और महान अनुभवी पुरुषों ने उत्पत्ति और प्रलय के क्रमों को विभिन्न सोपानों में वर्णन करते समय उनकी व्याख्या अधिकतर की है। इस क्रम में अपने लेखों और प्रवचनों में जो कुछ मैंने कहा है वह मेरा निज अनुभव है।

दूसरों के अनुभव वचन अथवा वाणी की विद्या रूपी व्याख्या करना और बात है और निजी अनुभव का सचाई के साथ व्यक्त करना और बात है। प्रथम रूप का क्रम विद्वानों, बुद्धिमानों और चतुरों की प्रसन्नता का कारण होता है परन्तु द्वितीय प्रकार का वर्णन सच्चे खोजी और जिज्ञासू के लिए सन्तोष जनक होता है। तुम स्वयं और तुम्हारा मित्र चार पांच

वर्ष से मनुष्य बनो में मेरे लेखों का अध्ययन करते रहे हो। सत-संग भी किया है। और अब भी कर रहे हो। तुम्हारा अन्तःकरण मानता होगा कि मैंने कहां तक सार वस्तु को सुगम रूप में समझाने के लिए सत्यता से कार्य लिया है।

मैं अधिक व्याख्या में जाना नहीं चाहता। संक्षेप में कहूंगा कि शारीरिक मानसिक और आत्मिक जीवन एक प्रकार का सनसनाहट है। और प्रत्येक जीवन में भिन्न भिन्न प्रकार के बोध भान होते हैं। शारीरिक जीवन के बोध भान और प्रकार के होते हैं। मानसिक जीवन के दूसरी प्रकार के और आत्मिक जीवन अथवा आनन्द के बोधभानों की दिशा भिन्न प्रकार की होती हैं। यही दशायें आन्तरिक सोपानें कहलाती हैं।

अनेक महात्माओं और अनुभवी पुरुषों ने प्रत्येक तीनों प्रकार के जीवन के बोध भानों को वर्णन अपनी अपनी भाषा में करते हुए भिन्न भिन्न नाम रक्खे हैं। उनका उल्लेख महर्षि दातादयाल महाराज की पुस्तकों में विस्ताररूप से आया है। मैं उसे विस्तार में वर्णन नहीं करना चाहता। जिनको आवश्यकता हो वह सुरत शब्द योग कल्पद्रुम योग सुधार, सहजयोग, सारभेद, राधास्वामीयोग, आत्मिक आदर्श अथवा संसार का अद्भुत सिद्धान्त जो दयाल पत्रिका में अभी प्रकाशित हुआ है पढ़कर सन्तुष्टी कर सकते हैं। राधास्वामी मत की पोथी सार रचना, गद्य, और पद्य भी बहुत कुछ प्रकाश डालती हैं।

मैं नहीं कह सकता कि उन महा पुरुषों का भाव क्या था। प्रत्येक प्राणी उन सतपुरुषों की वाणी को अपनी बुद्धि के अनुसार समझता है।

आज लाखों प्राणी इस शिक्षा से सम्बन्धित हैं। अनेक स्थानों पर सतसंग का क्रम प्रचलित है। परन्तु सतसंगी साधारणतः अशान्त और असंतुष्ट पाये जाते हैं। उनकी आन्तरिक

कुरेद नहीं जाती। अधिक संख्या ऐसे प्राणियों की है जिनके अंतर में न प्रकाश प्रगट हुआ और न शब्द ही खुला और जीवन के लक्ष्य से कोरे दिखलाई देते हैं। भावुक, प्रेम कुछ और ही वस्तु है तुमने भी किया है। अनेक प्राणियों ने भाव के अन्तर्गत सहस्रों रुपया व्यय कर दिया। मठः गुरुद्वारे और धाम बन गये कारबार चल निकली, सांसारिक मान, प्रतिष्ठा बन गई। परन्तु प्राणी के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आया। अनेक प्राणियों को यह विचार दिया गया कि जब तुम्हारी मृत्यु होगी तो सतगुरु आकर तुम को ले जावेंगे। यह सब अज्ञानी जीवों के लिये संतुष्ट कारक वाणियां हैं। समय बदल रहा है इन दिलासाओं को बुद्धिमान जगत मानने के लिये तय्यार नहीं है। इसलिये ऐ दामोदर! मौज ने मुझे फ़क़ीर बनाकर जीवों के अज्ञान को दूर करने के लिये संसार में प्रगट किया है अधिक समय के सतसंगी और वास्तविकता के इच्छुक जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करते हुये अपने निज स्वरूप में प्रवेश कर सकें।

मैं जानता हूं कि सभ्य जगत के प्राणी मेरे इन शब्दों पर नाक भौं चढ़ायेंगे और मुझे अहंकारी समझेंगे। किन्तु है यह एक सत्यता।

तुम सतसंग में आये हो ध्यान पूर्वक मेरी बातों को सुनो। मैं यह विचार करते हुए कि जीवों का अज्ञान दूर हो केवल सतसंग का निमन्त्रण देता हूँ।

सन्तों की वाणी में सहसदल कमल से भंवर गुफा तक भिन्न भिन्न सोपानों का उल्लेख आया है। इसी प्रकार हिन्दुओं के प्राणायाम मन्त्र में ओं भू भुवः स्वः आदि सत्य तक के शब्द विभिन्न सोपानों के व्यक्त करने के लिये आते हैं। सूफियों की पुस्तकों में जबरूत, लासूत, मलकूत आदि सात सोपानों का संकेत विद्यमान है। यह क्या हैं? मानसिक भाव, विचार, वासनायें

अथवा बोधभान के खेल के दृश्य हैं इनमें भिन्नता स्थूल और सूक्ष्म के दृष्टिकोण से है।

जिस प्राणी का मन जो भाव विचारों का केन्द्र है मोटा है अथवा यह समझो कि बुद्धि स्थूल है। सूक्ष्मता अभी आई नहीं। उनके अपने अन्तर स्थूलता के कारण अपने ही भाव विचार वासनायें और बोध भान भिन्न २ प्रकार के दृश्य शब्द और प्रकाश के रूप में दृष्टिगोचर होते रहते हैं। ज्यों ज्यों प्राणी का मन निर्मल और बुद्धि सूक्ष्म होती जाती है आन्तरिक दृश्यों में भी परिवर्तन होता रहता है।

इसी प्रकार घंटा, शंख, मृदंग, सारंगी और बाँसरी आदि के शब्द क्या हैं? रंग विरंगे दृश्य पीले, लाल, नीलगै और चन्द्रमा की चाँदनी जैसे दृश्य क्या हैं? प्राणी के मानसिक भाव विचार और संकल्प एकाग्रताकी दशा में रगड़ खाते हैं। और उस रगड़ और टकराव से विभिन्न प्रकार के दृश्य और शब्द प्राणी के अन्तर उत्पन्न होते रहते हैं।

जब प्राणी का अनुभव जागता है। ज्ञान प्राप्त हो जाता है मन निर्मल और बुद्धि निश्चयात्मक हो जाती है (अति सूक्ष्म हो जाती है) तो उस समय यह दृश्य समाप्त हो जाते हैं। और एक विशेष प्रकार की अवस्था आती है जिसका वर्णन करना शब्दों में कठिन है। यह मेरे अपने जीवन का अनुभव है।

मैं जब बसरा बग़दाद में था। अज्ञानी था विवेक नहीं था। यह सब कुछ देखा और सुना। प्रकाश इतना अधिक होता था कि अँधेरे में आँख खोलने पर भी अधिक समय तक कमरा सम्बू प्रकाशवान दिखलाई देता था। और उसके भीतर रक्खी हुई प्रत्येक वस्तु स्पष्ट प्रकाशवान दिखलाई दिया करती थी।

चूँकि अब अनुभव और ज्ञान पूर्ण प्राप्त है रहस्य मिल गया है। मन निर्मल और बुद्धि अति सूक्ष्म बन गई है। शब्द

और प्रकाश की वह दशा नहीं रही।

हाँ जब कोई दुखी और आपत्ति का मारा प्राणी सामने आता है हित और मत देने की आवश्यकता पड़ती है। उसके दुख दूर होने और सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति की अभिलाषा प्रभावित होती है तो उसे हित और विचार देने के लिये इच्छा करके बल तू पूर्वक शब्द और प्रकाश उत्पन्न कर सकता है। साधारण अवस्था में एक अत्यन्त असीमित तत्व जिसमें—

न प्रकाश है न शब्द है न कोई दृश्य है रहा।
उसमें हुआ दाखिल फ़क़ीर जग से बे मुख हुआ॥
वह है ज़ात अपनी परम तत्व लामुहीत और लामकां।
उससे निकली कायनात सब अब उसी में गुम हुआ॥

यह मेरे जीवन का अन्तिम परिणाम निकला। परन्तु यह अवस्था केवल उस प्राणी को प्राप्त हो सकती है। जो मालिक अथवा परम तत्व से मिलना चाहता है। दूसरे को नहीं। जन साधारण को जो व्यवहारिक अथवा सांसारिक इच्छायें रखते हैं उन्हें चाहिए कि वह अपनी आशा व इच्छा को बढ़ायें।

ऐ दामोदर! मैं अपना हित तुमको देता हूँ। तुम शारीरिक और मानसिक जगत को श्रेष्ठतर रखने के लिए सदैव यह इच्छा रक्खो। "लोक अलोक पांउ सुखधामा"

तुम्हारी इच्छा तुम्हारे सांसारिक जीवन को सुखी और शाँतमय रक्खेगी। और तुम्हारा आन्तरिक प्रेम ज्यों ज्यों बढ़ता जावेगा सुरत स्वयं निर्मल होती जावेगी। अभी प्रारब्ध कर्म शेष हैं। वह स्वयं समय समाप्त होकर समय आवेगा जब तू भी मेरी भांति उस परम तत्व की अवस्था में लय हो जावेगा। सबसे श्रेष्ठ आंतरिक साधन यह है कि तू अपने आप में सच्चा बन। वास्तविक और सच्चे सतगुरु दाता से जो तेरे अपने अन्तर में हैं प्रेम किया कर। यही वास्तविक और सत्य भक्ति मार्ग है। मैं

इसका सम्पूर्ण जीवन अभ्यस्त रहा हूँ और अब भी हूँ। मैंने केवल अपने अनुभव को व्यक्त किया है। संतों के मार्ग में केवल भक्ति की मुख्यता है।

चतुर्थ सतसंग

दामोदरदास मैं ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुआ मेरा भाग्य मुझे राधास्वामी मत में ले गया। वहां से विचार मिला था कि संत का देश ईश्वर, परमेश्वर, ब्रह्म पारब्रह्म और सत्य लोक से भी परे है। मेरा समस्त जीवन इस रहस्य को समझने और उस देश में जाने की इच्छा में व्यतीत हुआ। दादूदयाल की परम पुनीत व्यक्तत्व ने मुझे जीवन भर संभाला। पाला पोसा, साधन और अभ्यास के अनुभव के पश्चात् यह समझ में आया कि वास्तव में मेरा घर बोध भान की रचना अर्थात् शारीरिक मानसिक और आत्मिक जगत से ऊँचा है। या मेरा अस्तित्व प्रकाश और शब्द से परे है। शब्द प्रकाश विचार बोध भान और शारीरिकपन मुझसे ही निकलते हैं। मेरा अस्तित्व इन सबका आधार है।

यह भी सुना करता था कि संत में ऐसी शक्ति होती है जिसको शब्द और प्रकाश की रचना की शक्ति परास्त नहीं कर सकती। इस बात को जाँचने के लिये मैंने यह इच्छा की है कि प्राणी मात्र को शान्ति मिले। और इसी अनुभव के आधार पर इच्छा रखता हूं कि तुम्हारे ही कारण मध्य प्रदेश में अगम धाम अर्थात् अनुभव और ज्ञान का प्रकाश हो। अज्ञान और भ्रम का नाश हो। यदि यह बातें सत्य हो जावें तो संसार मान लेगा कि संतों का मार्ग यथार्थ में सत्य है। आगे मौज।

रहा मेरे सम्बन्ध में प्रश्न मैं भक्ती मार्ग का अनुयाई हूं। प्रारम्भिक जीवन राम अथवा परम तत्व को मानता था। जीवन

की दौड़धूप के पश्चात् इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि भक्ति का जो भाव प्रारम्भ में था वही अब भी है अर्थात् जो मैं पहले था वही अब भी हूँ। हां इतना अन्तर अवश्य है कि पहले बाहरमुखी था अब अन्तरमुखी हूं। यह विचार भी राधास्वामी मत के वचनों के संस्कार से उत्पन्न हुए। न कुछ निज स्वार्थ न अभिप्राय।

पंचम सतसंग

दामोदरदास जी तुम खोजी अथवा जिज्ञासू हो। मैं भी था। अब भी हूँ। खोज क्या है? प्राणी के भीतर एक कुरेद है या यों समझो जब तक जीवन है तब तक सञ्चालन होता रहेगा। जहां संचालन है वहां शान्ति कहां। हां! संचालन में आनन्द अवश्य है। कोई प्राणी उस समय के अतिरिक्त जब कि वह अपने आपको शरीर मन और आत्मा से प्रथक न कर ले शान्ति में नहीं रह सकता और उस प्रकथन की दशा का ही दूसरा नाम परम तत्व अथवा आधार है। वह अनुमानिक इष्ट नहीं है वरन् है किंतु खेद है।

इज़हार नहीं हो सकता है उस हस्तिये मुतलक का।
कौन कह सकता है कि वह दर असल है क्या॥
जिस्म दिल रूह को त्यागे तब कोई अनुभव करे।
करके अनुभव अपने आप में वह चुप हो रहे॥
आलमे खामोशी के समुन्दर में हूँ अब जा रहा।
कह गया ज़िन्दगी का अनुभव जो कि मुझको था हुआ॥

मौन अवस्था में जाकर

भूल जाता हूं मैं सब कुछ भूलने में लुत्फ़ है।
भूलना तो बन्द में ही मगर वह भूलना बे लुत्फ़ है॥

यह अवस्था तुमको भी प्राप्त होगी किन्तु अभी नहीं। क्यों ? तुम्हारे अन्तर अभी वासनायें विद्यमान हैं। प्रारब्ध कर्म शेष हैं।

जब तक भोग न लोगे तब तक कट नहीं सकते।
कर्म भोग है जब तक या है मौज दयाला।
जो भी आया इस जग में वह है बरे काला॥
जब तक पिंजर काम करो तुम काम करो तुम भाई।
पर उस काम में सदा ही देखो औरों की भलाई॥
चित में रख दाता का प्रेम अन्तर दृष्टी लाना।
जीवन मुक्त रहते हुये तुम जग का कर्म कमाना॥
तन के छूटे कहाँ जाओगे न आना न जाना।
अपनी फर्दियत को खो करके परम तत्व हो जाना॥
मस्त रहो अलमस्त रहो मस्ती का जाम पीना।
मस्ती में रहकर कर्म करो यह है असली जीना॥

दामोदरियां—जीवन में राम अथवा परमतत्व के मिलने की अभिलाषा थी वह राम क्या निकला ?

जहां नहीं देह गेह और प्रकाशा, नहीं वहां शब्द न कोई तमाशा।
एक परमतत्व का भान दामोदर, वह है मेरा दयाल अति सुन्दर॥
दयाल शिव ने था भेद बताया, सतसंगियों ने उसे प्रगटाया।
मैं तुम भाइयों के चरन पर बारी,आपके अनुभवों ने मेरी संभारी॥

वह कैसे ? मैं स्वयं भ्रम में था अज्ञानी था उसकी खोज बाहर करता था। सतसंगियों के अनुभव ने मुझे निश्चय करा दिया कि वास्तविक और सच्चा गुरू अनुभव और ज्ञान है। बाह्य भ्रम मिट गया। परमतत्व की खोज अपने अन्तर ठहरकर की। खोजा।

खोजत खोजत खुद को विस्माधी आई, विस्माधी से गया पार जब भाई।

भूला खुद को और भूली खुदाई, सुरत शब्द मिल एक हो रहाई ॥
परम धाम है एक हालत लामकानी, पावे उसको भक्त ज्ञानी ।
कुछ दिन का है अब यह खेला खेला, फिर नहीं होगा तुम्हारा हमरा मेला ॥
तूने प्रेम किया मोहि जान फ़क़ीरा, जा तू भी होजा अब गहर गंभीरा ॥
जब लग तन मन प्राण तुम्हारे, सेवा का कर प्रण तू प्यारे ॥
पहले सेवा अपने घर वालों की, पीछे कर सेवा तू दूसरों की ।
गुरू हैं घट घट हर तन में रहते, बात न समझत फिरो मेरे पीछे ॥
सार भेद मैंने बतलाया, आरत समझ तुम्हें कह गाया ॥

छटा सतसंग

दामोदर ! संसार में हर जगह सचाई नहीं है। सचाई के ग्राहक भी कम हैं। जिस प्रकार व्यवहार और राजनीति में पर्दादारी से कार्य लिया जाता है । इसी प्रकार धार्मिक और पाँथिक जगत में भी यही रक्खा गया है। यही प्रकृति की जान है। हां यह बात अवश्य है जहां बहुत से प्राणी व्यवहार और राजनीति में पर्दादारी से लाभ उठाते हैं दूसरे व्यक्तियों को हानि भी पहुंचती है। इसी प्रकार धार्मिक और पांथिक जगत में बहुत से प्राणी साधू और महात्मा कहला कर पर्दादारी से लाभ उठाते हुये मान, प्रतिष्ठा, धन, सम्पति प्राप्त करते हैं और दूसरे प्राणी उनका आहार बनते हैं।

कलयुग में संत प्रगट हुये। उन्होंने उच्च स्वरों में पुकार की:— आप आपको आप पहँचानो। कहा और का नैक न मानो।

सहारे के इच्छुक प्राणी धार्मिक और पांथिक जगत में साधू और महात्माओं की त्रुटि से दास बन जाता है। तुमको

स्वयं इसका अनुभव है। अपने जीवन का अध्ययन करो। स्मरण होगा। किस प्रकार रोचक और भयानक बातें सुना सुनाकर तुम्हारी आंखों पर पट्टी बांधकर अपना बोझ लादने वाला पशु बनाया गया था। मुझ से क्या स्पष्ट कहलवाते हो। संसार की दशा देखी। अज्ञानी जीवों पर दया आई। सत्यता के व्यक्त करने का बीड़ा उठाया। किन्तु खेद तो इस बात का है कि जीवों को इस प्रकार भ्रम और अज्ञान ने मारा हुआ है अथवा काल और माया के अन्तर्गत हैं कि वह सचाई को सुनने के लिए तैयार ही नहीं हैं। बारम्बार पुस्तकों और प्राचीन ग्रन्थों का प्रमाण चाहते हैं। मैं निज अनुभव का प्रमाण प्रेषित करता हूं।

जब तक जीवन है। वह संचालन में रहेगा। हाँ जब तुम अपने आपको शरीर, मन और आत्मा से ऊपर ले जाओगे ठहराव और चैन प्राप्त होगा, समाधी लगैगी, शान्ति मिलेगी। किन्तु शरीर के रहते हुए फिर उत्थान होगा। प्रत्येक प्रकार की समाधि का उत्थान अवश्य होगा। इसलिए अनुभव के पश्चात यह समझ में आया कि प्राणी जिस अवस्था में है उसका आनन्द ले। जब मौज अथवा प्रकृति से जीवन दूसरी ओर झुके तो वहां का आनन्द लो। जीवन को आनन्द मय रखने का स्वभाव डालो स्मर्ण रक्खो कोई प्राणी चाहे वह संत हो अथवा परम संत शरीर रखते हुये सदैव एक दशा में नहीं रह सकता। हां यह हो सकता है कि रहस्य अथवा ज्ञान प्राप्त करके या मन पर अधिकार पाकर अपनी प्रत्येक अवस्था में ठहराव या चैन की अवस्था में रह सकता है। स्थिरता प्राप्त कर सकता है। और जैसे जैसे उसकी दशा उसकी अपनी प्रकृति के अनुसार बदलती जावेगी वह ऊपर की अवस्थाओं में भी स्थिरताई को स्थिति करने का अभ्यस्थ हो जावेगा। यह वास्तविक रहस्य है भेद है मेरे अपने जीवन का अनुभव है। दूसरों की बातों पर न जाओ। तुम जड़ और चेतन

की ग्रन्थी हो। उसको गुरू ज्ञान से खोलो। अपने रूप को समझो। संसार में विचरो। ज्यों ज्यों सुरत की धार ऊपर मस्तिष्क की ओर जाती रहेगी। दशा बदलती रहेगी।

सातवां सतसंग

मैं जीवन में राम परमतत्व अथवा निज स्वरूप के दर्शन का अभिलाषी था। अपने कर्म भोग के अन्तरगत दातादया के संकेत और बाबा सांवलेशाह की आज्ञानुसार निज अनुभव कहता और लिखता रहता हूँ।

परमतत्व, राम, निजस्वरूप, सर्वाधार, एक वे अन्त तत्व है। जिसके रंग और रूप को व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह बात नहीं है कि वह अरंग और अरूप है। हम तुम और समस्त सृष्टी, स्थल, सूक्ष्म और कारन उससे निकली है और उसी में समाती है। हमारा शारीरिक, मानसिक, और आत्मिक जीवन उसी के आश्रित रहता है। सन्त कबीर, गुरु नानक और सत्य पुरुष राधास्वामी दयाल ने इस अनुभव के पश्चात् पंथ की नींव रक्खी जिससे कि जीवों के उस पक्षपात और हटधर्मी को दूर किया जाय जो विभिन्न धर्मों के अनुयायी होने के कारण उनमें उत्पन्न हो गया है। और अज्ञान की जड़ काटी जावे। जिस आशय को लेकर पंथ की नींव डाली गई थी वह पूरा नहीं हुआ। इसलिए विवश मुझे स्पष्ट शब्दों में सत्यता का वर्णन करना पड़ा। मेरी बातों को सुनकर पंथ के मतवाले, अज्ञानी जीव नाँक भौं सकोड़ते हैं। इसका कारण है कि सत्यता की शिक्षा से उनके अज्ञान का विश्वास टूटता है। विवशता है क्या राधास्वामी मत वालों के कारण राम; कृष्ण बुद्ध, जैन मत आदि के अनुयाइयों का विश्वास नहीं टूटता। जिस नियम के आधार पर स्वामी जी महाराज ने वेदान्त, सूफ़ीइज्म, और विभिन्न

धर्मों का खंडन किया है। उसी नियम के आधार पर सत्यता का अंग लेता हुआ मैं यह कहने के लिये विवश हूं कि वास्तविक और सच्चा गुरु मत केवल यह है कि किसी पूर्ण पुरुष का सतसंग करो। जो वह कहता है उसे सुनो और गुनो और जब तक उसकी वाणी में सत्यता प्रतीत न हो व्यर्थ विश्वास मत लाओ।

आठवाँ सतसंग

ऐ दामोदर! मेरा जीवन खोज में व्यतीत हुआ। सुरत शब्द योग, भक्ति, ज्ञान और कर्म करता हुआ चला आया। अपने कर्म भोग वश मौज या मालिक की प्रेरणा के अन्तरगत अपना निज अनुभव अथवा अपनी निज बीती कहता रहता हूँ।

अन्तर में शब्द है प्रकाश है। आज सम्पूर्ण रात्रि उस असीमित प्रकाश और शब्द के समुद्र में डूबा रहा। मालिक तथा परम तत्व की खोज थी। इस परिणाम पर पहुँचा कि कोई शरीर धारी प्राणी सदेह किसी दशा में एक रस नहीं रह सकता। अनुभव क्या कहता है?

खोजत खोजत खो गया पाया नहीं अन्ता,
वृथा निकली खोज यह खोज से कुछ नहीं बनता।

दातादयाल ने भी अपना अनुभव कुछ ऐसे ही शब्दों में वर्णन किया है। एक जगह वह लिखते हैं।

बात बात में बात रे साधू बात बात में बात,
ज्यों केले के पात में पात पात रे पात।

संतों की वाणी में अनेक बार आया है कि संत और फ़क़ीर जो शब्द और प्रकाश का रहने वाला हो उसकी महिमा बहुत बड़ी है इस बात के अन्तरगत निश्चय करने के लिए मैंने यह इच्छा की है कि प्राणीमात्र को शान्ती मिले (Peace to Humanity)

तुम्हारे लिए चाहता हूँ कि तुम्हारा जीवन सुख, शान्ति प्रसन्नता प्रफुल्लता से व्यतीत हो। इसको आशीर्वाद समझलो। यह भी इच्छा है कि तुम मध्य प्रदेश में मनुष्यता का प्रचार करो। जिससे जन साधारण जीने के रहस्य को पाकर सुखी और प्रसन्न रहें। आपस में प्रेम रक्खे द्वेष, ईर्षा और घृणा दूर हो।

तुम खोज का विचार छोड़ो वरन् विश्वास और निश्चय को धारण करो। जीवन सहारा चाहता है उसको सतगुरू अथवा मालिक का सहारा हो, और अपने मन को इस विश्वास या भक्ति के सहारे रखते हुए प्रसन्न चित्त रहो। जल्दी मत करो। समय की प्रतीक्षा करो। मेरी दशा क्या है मैं संसार का व्यवहार अब नहीं कर सकता। करता हूँ तो विवश नीचे आना पड़ता है जिसको चित्त नहीं चाहता।

जान बूझ अनजान बनकर काम करता रहता हूँ।
बल और शक्ति रखता हुआ निर्बल बनकर रहता हूं॥
मौज को यही स्वीकार है।

तुम प्रेम के अन्तरगत हो सूट मेरी पुत्रियों के लिए लाये हो। लेने देने का सम्बन्ध प्रेम में साथ साथ चलता है। मैं भी उसी भाव के अन्तरगत दो साड़ियां आपकी और सेवाराम जी की धर्म पत्नियों के लिये देताहूं! उनको दे देना और कह देना कि वह परस्पर प्रेम भाव से रहें।

इस संसार में हम एक दूसरे का ऋण चुकाने के लिए विवश हैं। कर्म क्षेत्र है जो कुछ किसी से लेना देना है ले दे कर चलते बनते हैं यह मेरा अनुभव है। इसलिए मैं समझता हूँ कि संसार ऋणी है।

अपनी पुत्री प्रेमप्यारी के विवाह में मैंने केवल १५००) रु० व्यय किये। मेरी पत्नी झगड़ती थी कि बड़ी लड़की को ४० तोला सोना दिया था और प्रेमप्यारी को केवल पांच तोला। यह क्यों?

तंग आकर मैंने कह दिया था कि मेरे अनुभव में यह आया है कि इस लड़की का १५००) रु० के अतिरिक्त ७००) रु० शेष मेरी ओर और है वह अब दे दो या फिर दे देना। पत्नी मुझे दीवाना समझ कर चुप हो रही। लड़की चार वर्ष पश्चात् अस्वस्थ हुई। मेरे जामाता की आर्थिक दशा शोचनीय थी। लोक लाज वश मेरी पत्नी ने मुझे उसकी सहायता के लिए विवश किया। मैं रुपया भेजता रहा। जब अन्तिम १००) रु० भेजा तो लड़की का स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार के निज अनुभवों ने निश्चय करा दिया कि हम सब अपना लेना देना चुकाते हैं। यही कारण है कि मैं किसी से कुछ इच्छा नहीं रखता। न सेवा आदि लेने का इच्छुक हूं। किन्तु स्मरण रहे बिना सेवा किये हुए कार्य भी नहीं बन सकता। इसलिए मेरी सच्ची सेवा यह है कि मेरे विचारों को जो कि सत्य है फैलाओ। गुरू प्रेम और ज्ञान है, इसमें यदि तुम कुछ व्यय कर सकते हो यथाशक्ति करो। मुझे स्वयं कोई इच्छा नहीं है। अच्छा सुखी रहो।

प्रार्थना दातादयाल महर्षि जी महाराज के पवित्र चरण कमलों में–

ज़िन्दगी के ख़्वाब में आपसे था मेल हुआ।
प्रेम का था खेल खेला खेल अब ख़तम हुआ॥
आपने आज्ञा दीनी जगत का कल्याण कर।
यह नहीं बताया कि तू फ़क़ीरा क्या क्या कर॥
अपने जीवन का जो अनुभव था उसे है कह दिया।
ज़िंदगी में बेग़रज़ और बे लौस होकर कह रहा॥
हुक्म के ज़ेरे असर चाहता हूं जगत का कल्याण हो।
जीवों को असली और सच्ची ज़िन्दगी का ज्ञान हो॥
भूल भरम में जग फँसा मैं भी था फँसा।

दया तुम्हारी से निकल गया और राज को पा गया ॥
प्रेम दे चरणों का सच्चा गुम हो जाऊँ ज़ात में ।
क्या धरा है भला दुनियां के मज़ख़रा फ़ात में ॥
राधास्वामी राधास्वामी रूह से कहता रहूं ।
जपता जपता नाम तेरा अब तुझमें समा रहूँ ॥

रती सुन्दरी की कहानी

(ले० महर्षि जी महाराज)

विचार से ही प्राणी को सुन्दरता व कुरूपता प्राप्त हो सकती है ।

गढ़ नहीं सकता है जो कोई भी तदबीरें नई ।
लेख कर सकता है वह दुनियां में तदबीर नई ॥
क्या है तदबीर ? ज़रा ग़ौर करो दिल में तुम ।
वह तक़दीर की एक सूरत तहरीर नई ॥

रती सुन्दरी साकेतपुर के राजा केसरी की एक मात्र पुत्री थी। माता का नाम कमल सुन्दरी था। चूँकि माता शिक्षित, धर्मात्मा और पवित्र आत्मा थी इसलिए उसने अपनी एक मात्र कन्या को इस प्रकार शिक्षा दी कि वह भी अपनी माता का अनुकरण करके योग्यता को प्राप्त हुई। यह कुटुम्ब जैन मत का अवलम्बी था। क्योंकि उस काल में जैनधर्म का प्रचार अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया था। यों कहने के लिए चाहे कुछ कह लिया जाय परन्तु जैनियों का पवित्र जीवन अन्य प्राणियों के सदैव से एक आदर्श रहा है जैनी कहते कम थे किंतु करते अधिक थे। मौखिक प्रचार का कार्य उनके यहां कभी इतना नहीं था जितना जीवन को सत्यता के साँचे में ढालने का था। और यही कारण है कि देखते देखते वह एक समय में संसार का राज्य धर्म बन

गया। बौद्धों की भांति उनके यहाँ भी पढ़ने लिखने की परम्परा बराबर चली आती है। पुत्र हो या पुत्री दोनों को शिक्षा देना अनिवार्य था। जिससे कि प्रत्येक प्राणी अपने धर्म से परिचित रहे। आजकल के जैनियों की दशा पर न जाओ। इस समय तो उनका पतन है। जिस समय उनका उत्थान था उनके गुण, कर्म सुभाव अनुकरण करने के योग्य थे और धर्म के सम्बन्ध में उनसे अधिक विश्वासी और सत्यता का पालम करने वाला कदाचित् ही कोई रहा हो। बालकों को जैनी भिक्षु और बालिकाओं को जैनी भिक्षुनियां शिक्षा दिया करती थीं। कुमारी रती सुन्दरी को भी एक जैनी भिक्षुनि ने शिक्षा दी थी। कर्म धर्म की वार्ता का भले प्रकार उसको ज्ञान था। बुद्धिमान थी और अवसर के अनुसार कार्य कुशलता भी उसमें थी।

जिस समय रती सुन्दरी युवा अवस्था को प्राप्त हुई माता पिता ने उसका विवाह नन्दननगर के राजा चन्द्र के साथ किया और वह माता पिता के निवास स्थान को छोड़कर पति के यहाँ चली गई। रती सुन्दरी अत्यन्त रूपवती थी। चन्द्रराजा उसको देखकर मुग्ध हो गया! यहाँ तक रात दिन उसके संगत के अतिरिक्त और किसी कार्य में मन नहीं लगता था। रती सुन्दरी ने यह दशा देखी पतिदेव से कुछ नहीं कहा वरन् शनैः शनैः जैन शास्त्रों को सुना सुनाकर उसकी काया पलट कर दी और उसमें वैराग्य और धर्म भाव का अंकुर उत्पन्न कर दिया। इस पर भी पति और पत्नी दोनों में अनन्य प्रेम था और वह दोनों परस्पर प्रेम प्रीति का दम भरते थे।

चन्द्र और रती सुन्दरी मग्न थे। किन्तु दैवीय संयोग से ऐसा समय आगया कि उनके सुख शान्ति के भण्डार पर बिजली गिरी और कुछ समय के लिये उसने इनको जलाकर भस्म कर दिया।

कुरु देश का राजा महेन्द्रसिंह बड़ा पराक्रमी और तेजस्वी था और साथ ही वह भोगविलासी स्वाभाविक था।

उसके दरबार में एक जयचन्द नामी मन्त्री रहता था जो अपने स्वार्थवश उसको भोगविलास की बातों में लगाये रखता था। एक दिन उसने महेन्द्रसिंह से कहा कि इस समय भारतवर्ष में राजाचन्द्र की रानी रती सुन्दरी सी कोई रूपवती संसार में नहीं है।

रतीसुन्दरी के रूप का समाचार सुनकर महेन्द्रसिंह के मन में नाना प्रकार के अपवित्र विचार उत्पन्न हुए। जैचन्द उसको प्रतिदिन उत्तेजित करता रहा। अन्त में राजा ने धर्म से पतित होकर निर्लज्जता का वस्त्र धारण किया और चन्द्रराजा के पास दूत भेजा कि रती सुन्दरी को मेरे महल में भेज दो वरन् तुम्हारी कुशलता नहीं। चूँकि दूत ने अहंकार और घमण्ड के शब्दों में राजा का संदेशा दिया था चन्द्र के साथियों ने उनकी बड़ी दुर्गति बनाई। वह किसी युक्ति से निकल कर कुरु देश में आया और सारा वृतान्त राजा महेन्द्रसिंह को सुनाया।

जिस समय महेन्द्रसिंह ने अपने दूत के निरादर की सूचना सुनी इसी बहाने पर उसने नन्दन नगर पर आक्रमण कर दिया। घमसान युद्ध हुआ। कितने ही दिवस तक लोहे से लोहा बजता रहा। चन्द्र निर्बल था परास्त हो गया। महेन्द्र शक्ति शाली था विजयी हुआ। जिस समय घायल चन्द्र को उसके साथी पकड़कर पहाड़ की ओर ले गये और महेन्द्रसिंह का नगर पर अधिपत्य होगया उसने भागे हुये राजा के महल में प्रवेश किया और रती सुन्दरी को वलातकार अपने राज्य में ले गया।

इसके पश्चात् चूँकि उसको भय था कि नन्दन नगर की प्रजा सुगमता से अधिकार में नहीं रहेगी उसने उसको बिलकुल

छोड़ दिया और राजाचन्द्र फिर लौटकर राज काज करने लगा।

रती सुन्दरी महेन्द्रसिंह के महल में आई। रात दिन चिंता में रहती थी। एक ओर उसको अपने पतिदेव की आपत्ति का विचार था दूसरी ओर अपने सतीत्व की रक्षा की चिन्ता रहती थी। रात दिन वह इसी असमंजस में रहा करती थी। कुछ दिवस के पश्चात महेन्द्रसिंह रतीसुन्दरी के महल में आया और संबोधित करके कहने लगा। सुन्दरी! तू जानती है कि मुझमें और चन्द्र में परस्पर क्यों युद्ध हुआ? दूत का निरादरता तो केवल बहाना था। आवश्यकता नहीं कि मैं तुझे अधिक यह व्रतान्त सुनाऊँ। आज मेरे भाग्य उदय हुये हैं कि तू मेरे महल में आई। अब मैं तुझसे प्रार्थना करता हूं कि तू मेरी रानी बन जा। और मेरा और अपना जीवन सुफल कर।

रतीसुन्दरी ने भोग विलासी राजा की बातें सुनी मन ही मन में अपनी सुन्दरता पर पश्चाताप करते हुए धिक्कार देने लगी।

यदि मैं सुन्दर न होती तो आज पति से वियोग की घड़ी क्यों आती? अब क्या करूँ? क्या न करूँ? यदि जान देती हूँ तो आत्मघात का पाप लगता है। यदि जान नहीं देती तो पतिव्रत भंग होने का भय है। प्राण देना सुगम है किन्तु अभिलाषा यह है कि एक बार पति देव का दर्शन प्राप्त हो जाय। फिर मत्यु का कष्ट न होगा। यदि मैं महेन्द्रसिंह को कुछ समझाती हूँ तो वह कभी न मानेगा वरन् बलात्कार करेगा। इसलिए नीति से कार्य लेना चाहिए।

यह सोचकर रति सुन्दरी ने मुसकराकर कहा महाराज? आपकी क्या बात है। आप बलवान हैं, श्रेष्ठ हैं, पराक्रमी हैं। मैं एक अबला स्त्री हूँ। मैं आप से कुछ दान मांगना चाहती हूं। यदि आप वह मुझे दे दें, तो फिर जो आप कहेंगे, मैं

सुनूँगी। राजा ने कहा ऐसी क्या वस्तु है, जो मैं तुझे न दे सकूँगा। तेरे ऊपर मेरा प्राण, तन, मन, धन, संपति, राज, पाट, मान, प्रतिष्ठा, धर्म कर्म सब निछावर है। जो तू कहेगी वह मैं तुझे अवश्य दूँगा। रानी बोली वास्तव में आप श्रेष्ठ पुरुष हैं। मैं और कुछ नहीं मांगती केवल यह चाहती हूँ और यही मेरी अभिलाषा है कि चार मास के लिये मुझे ब्रह्मचर्य के तप करने का अवसर दिया जाय। चार मास अधिक नहीं होते।

राजा मदान्ध था उसकी आँखों पर चर्बी छा गई थी। चार मास उसे एक युग के समतुल्य प्रतीत हुये किन्तु क्या करता। वह बचन दे चुका था। रतीसुन्दरी को अप्रसन्न भी करना नहीं चाहता था बोला, अच्छा जैसी तेरी इच्छा। और यह कहकर महल से बाहर चला आया।

रतीसुन्दरी ने उस दिन से वह अभ्यास करना प्रारम्भ किया जिसको जैन शास्त्रों में "आँवल तप" कहते हैं। वस्त्र और आभूषण रख दिये साधारण वस्त्र पहन लिये और कठोर तप कर जीवन व्यतीत करना आरम्भ कर दिया।

अभी चार मास व्यतीत होने नहीं पाये थे कि महेन्द्रसिंह फिर उसके पास आया। देखता क्या है कि चन्द्रमा को ग्रहण लग गया है। रति सुन्दरी दुर्बल हो गई है। उसने कहा यह क्या कर रही है। यह मैंने आँवल वृत धारण कर रक्खा है चार मास तक बराबर तप करती रहूँगी। यदि इस काल में तुमने व्यर्थ मेरे वृत को भंग करना चाहा तो स्मरण रक्खो मैं और तुम दोनों नर्क गामी होंगे। राजा ने कहा कि संसार सुख और आनन्द भोगने का स्थान है। यह मार्ग तपस्वियों का है, तेरा और मेरा नहीं। सती रती सुन्दरी बोली सुनो राजा! मानुष जन्म सदा सर्वदा नहीं मिलता। जो कुछ समय जप तप में बीते वही सुफल है। उस शरीर की सुन्दरता में क्या धरा है। आज मरे कल

दूसरा दिन। यह शरीर दुर्गन्धि का पात्र है। मल, मूत्र के अतिरिक्त इसमें क्या धरा है। इस पर मोहित होना मूर्खता है। यहां तक कि उसने इस प्रकार की अनेक बातें सुनाई किन्तु राजा के हृदय पर तनिक भी प्रभाव न पड़ा। क्योंकि भाग के भूत ने उसे अंधा बना रक्खा था। रतीसुन्दरी ने देखा कि वह चार मास के पश्चात् फिर दुन्दुकाल मचायेगा उससे छुटकारा पाना ही कठिन है इसलिए कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि उसके हाथों से मुक्ति प्राप्त हो। स्त्री बुद्धिमान थी शास्त्रों के अर्थ और भावार्थ को भली प्रकार समझती थी। उसने विचार किया कि मैंने तप कर लिया है, मन की बिखरी हुई शक्ति एकाग्र हो गई है। इस समय मैं जिस विचार की ओर ध्यान दूँगी वह मुझे प्राप्त हो जावेगा। जैनियों के ग्रन्थ में अलंकार के रूप में शासन देवी का उल्लेख आया है। अज्ञानियों के लिये तो वह केवल कहानी है परन्तु विचार वानों के लिये गुप्त रीति से उसमें संकल्प शक्ति के सम्बंध में वह बातें अंकित हैं कि जिनके अनुष्ठान करने से प्राणी जो चाहे वह कर सकता है और हो सकता है। संकल्प में बहुत बड़ी शक्ति है।

जैसा ख्याल वैसा हाल, जैसा ख्याल वैसा माल।

रूपता का केवल विचार के दृढ़ करने से कुरूप बन जाना और कुरूपता का केवल विचार की एकाग्रता से रूपवान हो जाना संकल्प शक्ति का एक तुच्छ कर्तव्य है। वास्तव में मनुष्य का जीवन संकल्प मय है। इसके शरीर के अङ्ग अङ्ग आंख, कान, नाक, केवल उसके विचार की धारों के घने रूप हैं। मन में एक विचार उत्पन्न हुआ उसका मन पर अधिकार हो गया फिर शनैः शनैः वह अपना रंग रूप दिखाने लगता है। और जैसी अभ्यासी की इच्छा होती है वैसा ही वह बन जाता है। यह ध्यान मार्ग, विचारमार्ग, चिन्तन शक्ति है और यही जैनियों की शासन-

देवी का साधन है। सूक्ष्म बुद्धि और उच्च विचार प्राणी इसको समझते हैं साधारण बुद्धि वालों के लिये इसका समझना दुर्लभ है।

रती सुन्दरी ने यह विचार मन में पकाना प्रारम्भ किया कि मैं कुरूप हूँ, कोढ़ी हूँ, मेरे शरीर से दुर्गन्ध निकलती है, शरीर में फोड़े फुन्सी, निकल आये हैं जिनसे पीप और रुद्र बहता रहता है और प्राणी को देखकर घृणा अरुचि उत्पन्न होती है। साधन करते उसका रंग रूप बदल गया। संकल्प ने अपनी शक्ति दिखलाई विचार ने अपना प्रभाव व्यक्त किया और चौथे मास के व्यतीत होते ही वही रानी जो देश में अपनी सुन्दरता के लिये अद्वतीय थी, अत्यन्त कुरूप, भयंकर घृणात्मक हो गई।

शक्लो सूरत जो मिली शक्ल भी सूरत भी गई।
शक्ल के साथ ही सब ख़सलतो सीरत भी गई॥
मरते थे नाम पै हम, इज्जतो हुरमत भी गई।
मरतवत, शौहरतो, तौक़ीर भी सूलत भी गई॥
रहम थे रहम थे दुनियां में सभी नामो निशां।
ग़ौर से देखा तो बस, ख्वाब का मंज़र था जहां॥

चौथे मास की रात्रि का समाप्त होना था कि प्रातःकाल ही महेन्द्रसिंह रती सुन्दरी के कमरे में आया। कमरे में प्रवेश करना था कि दुर्गन्ध ने उसकी नासिका पर आक्रमण किया। जिस समय रती सुन्दरी के रूप पर दृष्टि गई कुरूपता ने आंखों पर आक्रमण किया। उसने अनेकों उपायों से अपने आपको अधिकार में रखने का प्रयत्न किया परन्तु वह सारी पहलवानी भूल गया। क्योंकि सती के विचार के साथ संघर्ष करना किसी शारीरिक शक्ति वाले का कार्य नहीं। रती सुन्दरी पृथ्वी पर बठी हुई है, उसके शरीर से रुधिर और पीप निकल रहा है, आंखें धँसी हुई, गाल पिचके हुए, बाल बिखरे हुए। उसने विचार किया कि

कि यह रती सुन्दरी है या कोई और है। दो चार क्षण तक उसको देख लिया। फिर पूछा क्या तू रती सुन्दरी है? उसने कहा हाँ। क्या इसमें भी कुछ संदेह है? मेरी सूरत देख, मेरे रंग रूप को देख, मेरे छव धव को देख। मेरी यह दशा तेरे कारण हुई है तू पापी है! तेरे विचार बुरे हैं। तू मनुष्यता और सभ्यता से गिर गया। तूने चन्द्र की अर्धाङ्गिनी का पतिव्रत भंग करना चाहा देख! तेरे कारण उसका यह रूप हो गया है। क्या अब भी तू अपनी कुटेव न छोड़ेगा और फिर भी महान्ध रहेगा? राजा भय से कांपने लगा। उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ और क्षमा प्रार्थी होकर बोला मैं तुझे ऐसा नहीं समझता था। जा! मैंने तेरा विचार मन से दूर कर दिया। यह मेरी शक्ति से बाहर है कि मैं तुझे रूपवती बना सकूँ। खेद के साथ तुझे तेरे पतिदेव के पास वापिस भेजता हूँ। तेरा कर्तव्य मेरे जीवन पर सदैव प्रभावित रहेगा। और इसके प्रमाण में सबसे पहला कार्य मेरा यह होगा कि मैं जैन धर्म को अंगीकार कर लूँगा। जिसके प्रभाव से स्त्री और पुरुषों में ऐसे रत्न उत्पन्न होते हैं।

रती सुन्दरी आदरमान, मान, प्रतिष्ठा सहित नन्दननगर चली आई। चन्द्र ने उसका रूप देखा, उसकी जिह्वा से सारा वृतान्त सुना और शासन देवी के वृत धारण करने का परिणाम देखा। वह पछताने लगा। रती सुन्दरी ने कहा प्राणपति! तुम कुछ खेद न करो। जिस व्रत के कारण मैं कुरूप हो गई हूं उसी शासन देवी की कृपा से फिर रूपवती हो जाऊँगी और तुम्हारी सेवा की पात्र बनूँगी। केवल एक दो मास के लिए मुझे फिर तप करने दो जिससे कि मैं कुरूपता के विचार को सुन्दरता के विचार से परास्त करलूँ। उसने ऐसा ही किया और देखो! दो मास के पश्चात फिर वही रती सुन्दरी रूपवती शुद्ध, पवित्र बन गई। पति पत्नी दोनों प्रसन्नता पूर्वक रहने लगे। जिस प्रकार उनके दिन

फिरे मालिक करे सबके दिन फिरें।
जिस तरह उन्हें बाहम मिलाया, बिछड़े हुए सब मिलें खुदाया।

शब्द दयाल स्वरूप नन्द भाई जी महाराज

मिट्टी के पुतले-बोलता क्यों नाहें सतनाम ॥टेक॥

१—दो दिन का है ठाट बाट सब दो दिन का है रहन सहन।
दो दिन की है माया सिगरी दो दिन का है तेरा ब्रह्म॥

॥ दोहा ॥

ऐड़ी से चोटी पलक व्याप रहे गुरुदेव।
भूल भरम सब त्याग कर करले उनकी सेव॥

२—कभी बना तू राजा देश का कभी रहा प्रजा उसकी।
कभी लीडर बनकर भरमाया भ्रम हिंडोले झूल रहा॥

३—कभी मूँढ़ और गँवार बना है कभी ज्ञानी विज्ञानी है।
कभी कर्म और धर्म में फँसकर हैरानी हैरानी है॥

४—कभी कंगाल बना फिरता है कभी सेठ साहूकार बना।
अपनी ज़ात को कभी न जाना भूल भरम का शिकार बना॥

५—कभी दुखी और सुखी तू होता कभी धर्म औतार बना।
कभी ज्ञानी बन वचन सुनावे कभी कर्ता बेकार बना॥

६—तेरा मालिक तेरे घट में रोम रोम में व्याप रहा।
अणू २ में लीला उसकी फिर भी तुझे संताप रहा॥

७—मन इन्द्रियों को बस में करले देख लीला अन्तर की अभी।
निज स्वरूप का ज्ञान तू पाले वह नहिं तुझसे जुदा कभी॥

८—सुमिरन ध्यान भजन से प्यारे होगी सफ़ाई इस मन की।
मन दर्पन जब साफ़ हो गया झलकै झलक आत्म वरकी॥

९—सूरज की गर्मी पाकर ज्यों पानी ठंडा गर्म हुआ।
आतमके दर्शन से तेरा मन भी कुछ कुछ नर्म हुआ॥

१०–आत्मा तेरा अटल और निश्चल यकरस यक हालत में रहे।
मन जो तेरा डोलता रहता कर उपासना रूप बने ॥
११–इस प्रकार कर मन पर क़ाबू मन इन्द्रियों को मांज सदा।
निर्मल निश्चल होकर हरसै नसै भरम विकार भरा ॥
१२–पिंड में तेरे आतम हरसै आतम में परमातम रहे।
परमातम में नहीं है झांईं झांईं देख कबीरा हँसे ॥
१३–गुरुदयाल की दया भई है दया रूप धारा गुरु ने।
गुरु के चरण कमल में पड़कर मुक्ति लहै और भक्ति गहै ॥
१४–सतसंगत बाहर की करलें फिर अन्तर में ध्यान जमा।
गुरु स्वरूप का दर्शन पाकर नर जीवन को सफल बना ॥
१५–राधास्वामी पूर्ण पुरुष ने सार भेद सब दरसाया।
सतगुरु चरन शरन में चित दे हो गया अगम अपार अमाया

सतगुरु शरणम् गच्छामि

—००—

बिना सतसंग हरि नाम पावे नहीं, बिना हरि नाम ना मोह भागे।
मोह भागे बिना मुक्ति ना मिलेगी, मुक्ति बिन नाहिं अनुराग लागे
बिना अनुराग के भक्ति ना मिलेगी, भक्ति बिन प्रेम उर नाहिं जागे
प्रेम बिन नाम ना, नाम बिन संत ना, पलटू सतसंग बरदान मांगे

जिसने कि एक बार लिया मुँह से तेरा नाम।
सौ बार तूने उसके संवारे हज़ार काम ॥
तन मन से धन से नाथ जो होवे तेरा गुलाम।
मिलती है जीते जी उसे मुक्ति व तेरा धाम ॥
कटी, कुचली गई, पिसकर छनी, भीगी गुँधी मँहदी।
जब इतने दुख सहे, तब उनके क़दमों से लगी मँहदी ॥

——

कर्म भोग अथवा मौज

(ले० परमदयाल फ़क़ीर साहब)

लकड़ी की टाल पर शहतूत के वृक्ष की छाया में लेटा हुआ था 'मनुष्य बनो' पत्रिका की लिपि मिली, पढ़ी, आँखें बन्द हो गईं। विचार उत्पन्न हुआ कि ऐ फ़क़ीर! दीवाना बनकर क्या लिखता रहता है। अपने जीवन पर दृष्टि गई। सुनो मित्रो! इस माथा अथवा संकल्प देश के मिलने वाले जीवन के प्रारम्भ के तेरह वर्ष (पांच वर्ष से लेकर अठारह वर्ष तक) मानसिक, विरह उस मालिक की खोज में कि वह क्या है, कहां है व्यतीत हुये। अठारह वर्ष की आयु में रामायण व भागवत के पढ़ने से यह विचार मिला कि वह नर शरीर में आया करता है। उसकी खोज, रोना, धोना आरम्भ हुआ। २१ वर्ष की आयु में मौज दातादयाल महर्षि जी के चरण कमल में ले गई। ६ वर्ष अर्थात् ३० वर्ष की आयु तक सुमिरन ध्यान दृढ़ हुआ। ३० वर्ष से ४० वर्ष की आयु तक शब्द और प्रकाश के दृश्य देखे, आनन्द लिया, प्रसन्नता ली, मस्तियां लीं। सन् १६१६ के आरम्भ में मानसिक विरह छूटी अर्थात् मानसिक ज्ञान वेदान्त का हुआ किन्तु आत्मिक शान्ति न मिली। ४० वर्ष तक आनन्द महा आनन्द को भोगा। वसरा से वापिस आया। दातादयाल महर्षि जी ने ग्रहस्थ आश्रम में प्रवेश करने को संकेत किया। सन्तान उत्पन्न की। एक दो बच्चों की मृत्यु हो गई। अन्तरी शान्ती, पूर्ण अवस्था की न्यूनता को प्रतीत करता था यद्यपि प्रेम, भक्ति और अनुभव का आनंद अधिकतर लेता रहता था। दाता ने कार्य दिया, अपनी नीयत से काम निस्वार्थ निष्काम होकर किया। अब क्या दशा है।

एक ऐसी अवस्था में रहता हूँ जहां द्वैत समाप्त हो गया। द्वैत समाप्त होने से मेरा अभिप्राय—

न सेवक मन व रूह से, किसी का रहा,
और न हीं स्वामी बन कर किसी का रहा।
प्रकाश नूर का चाव था, वह भी अब मेरा जाता रहा ॥
यह ताल्लुक नूर और शब्द का दर असले ऐ मित्रो! द्वैत ही
था बना।
द्वैत में सुख है कहाँ, सच कहूं, बात ऊँची है यह पर कहने
से बाज रहा ॥

ज्ञात बस इक परमतत्व की ही आखिर रही, जिस्म दिल रूह
मेरा इक बुलबुल साबित हुआ।

इस अनुभव के आधार पर इस माया देश वालों को कर्म भोग वश अथवा मौज आधीन पुकार कर चला है "मनुष्य बनो"। यह धर्म, पंथ, सम्प्रदाय दायरे बनाने वाली तुम्हारी बुद्धि है यही माया कहलाती है।

बुद्धि अथवा अपनी माया को निर्मल करने के लिये किसी पूर्ण पुरुष का सतसंग अनिवार्य है। भ्रम और संशय जनक मन को सहारा देने के लिये किसी का विश्वास अत्यन्त आवश्यक है। आत्मिक आनन्द के लिये आन्तरिक प्रकाश व शब्द से सम्बन्ध जोड़ना अति आवश्यक है। अपने अस्तित्व को मिटाकर अपने व्यक्तित्व को जो शारीरिक, मानसिक और आत्मिक जीवन के कारण उत्पन्न होता है दूर करने के लिये परमतत्व, ज्ञात, अथवा निज स्वरूप में लौट जाना अनिवार्य है। जब वहां का अनुभव होगा फिर चैतन्य होकर मेरी भ्रान्ति कहोगे।

हम न आते हम न जाते न हम लेते औतार हैं।
हम आप अपने आप में सदा ही मुख्तार हैं॥
परमतत्व अविनाशी हैं आप अपने ही आप में।
अपनी मौज के ही आधीन हम बनाते संसार हैं॥

आप ही देखें तमाशा अपनी रचना का आप।
आप ही हैं आप आप में ही सरसार है॥
अपनी ही मौज से चोला फ़क़ीरी है लिया।
दे चले संसार को संदेश जो दरकार है॥
इन्सान बनो, इन्सान बनो, इन्सान बनो, दोस्तो!
बजुज़ इन्सानियत के इस वक्त जीना दुशवार है॥

कर्म भोग अथवा मौज

(ले०—परमदयाल फ़क़ीर साहब)

आज टूबून पत्र से अनेक पारलियामैंन्ट के मैम्बरों की ओर से हिन्दू, सिक्ख एकता के लिये अपील पढ़ी। कर्मभोग वश लेखनी हाथ में लेकर लिख रहा हूं।

अरे इन्सान तू बिलकुल ही हो गया नादान।
कौन यहाँ हिन्दू है और कौन है मुसलमान॥
कौन यहाँ सिक्ख है सबही हैं इन्सान। अरे इन्सान तू०
बिन गुरू ज्ञान भाई हो रहे हो अनजान।
कहत कहत हम हार गये तुम्हारे पड़ी नहीं कान॥
अपनी उत्पत्ति और लय पर कभी न गया ध्यान।
झूटे नाम रूप पर हो रहे हो परेशान॥

ऐ संसार वालो! प्रकृति ने मुझे दीवाना बनाया अपने वश की बात नहीं है, मौज! किन्तु तनिक सोचो। दो व्यक्तियों का झगड़ा सदैव तीसरा व्यक्ति मिटाया करता है। भारतवर्ष की फूट प्रसिद्ध है।

खेत में उपजै सब कोई खाय, घर में उपजै घर बह जाय।

प्रकृति माता ने अँग्रेजों को तुम्हारी फूट के कारण तुम

पर शासन के लिये भारतवर्ष में भेजा था। इससे तुमको पूर्ण अनुभव हो गया चैतन्यता हुई मौज ने स्वराज्य दिया। अपना शासन आया परन्तु लोग रहे वही दीवाने और सौदाई। कहावत है "रस्सी जल गई उसके बल न गये।"

अब तुमको समझाने के लिए जो प्राणी प्रयत्न करते हैं वह एक हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान अथवा धर्म या सामाजिक प्रथा से जो स्वयं मुक्त नहीं हैं तो तुम पर उनका क्या प्रभाव हो सकता है। जो कोई गुड़ खाता हो वह दूसरे को कैसे गुड़ खाने से रोक सकता है। इसलिए प्रकृति माता ने इसे कलियुग में संतमत को प्रकट किया है। वहां धन, सम्पति, डेरा, मान, प्रतिष्ठा की अभिलाषा ने टोलियां बनाईं संसार कहता है कि संतमत आध्यात्मिक विषय है। अहा हा मैं वह इन्सान हूँ जिसने सारी ज़िन्दगी पंथ में काटी।

मैं जानता हूँ रूहानियत है क्या, सांच की कोई सुनै न बाती॥
खुशी, शान्ती, आनन्द है रूहानियत, समझ में मेरे आई॥
भूल भरम में कलयुग डूबा, सांच न कहै कोई भाई॥
अज्ञान अंधेरा मेरा तेरा जब तक है रूहानियत न आई।
ताते सांच कहन को प्रगटा, यह मैं फ़क़ीर सौदाई॥

डाक्टर राधाकिशन के व्याख्यान जो इस समय वह चीन में पढ़े हैं वह सचाई पर हैं किन्तु पहले अपना घर तो देखो। इसलिये संतमत वालो? उठो! अब तुम्हारी बारी है। मूल त्रुटि को दूर करने का प्रयत्न करो। किन्तु स्वयं क्रियात्मक बनकर।

देश में इस समय केवल एकता उत्पन्न करने वाला यह संतमत ही है। जिसको मैं मनुष्यता का धर्म कहता हूं।

दो भाड़ में फेंक इन दायरों को इन दायरों में क्या रक्खा।
दो फेंक परे इस ग़ैरियत को इस ग़ैरियत में क्या रक्खा॥

असली पंथ इंसान का दिल है दिल को ही साफ़ है करना।
साफ़ किये इस दिल के बिना ज़िन्दगी का न सुख से है गुज़रना॥

एकता का दृश्य यदि कहीं दृष्टिगोचर होता है तो इन सच्चे साधुओं, सन्तों अथवा फ़क़ीरों के दरबार में। जहां हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान, ईसाई आदि सब एक प्लेट फार्म पर बैठकर वास्तविकता, सत्यता की वाणी सुनकर अपने जीवन को शानदार बनाते हैं।

सुन हो नन्दू, सुन हो कृपालियां, सुन हो प्यारे हरचरन।
हाथ रे बांध प्रेम से ख़ुद को करता हूँ तुम्हरे अर्पन॥
उठो, उठो, अब जागो, अपने कर्तव्य का करियो पालन।
जग में अंधेरा बहुत है छाया राधास्वामी कर गये वर्नन॥
संतमत को फैलाओ जग में कर कर साफ उसका वर्नन॥
प्रेम, प्रीति की रीति सिखाओ दिखाके अपने अमल का दर्पन।
सतगुरु ताक़त है ज्ञान भँडारा की उसका करो वर्नन॥
अपने फ़र्ज़ अदाकर जाओ जैसा है मत संतन।
आगे मौज दयाल सांवलेशाह की वह ही हैं कुल करनन॥

प्रार्थना

ले चल अब निज देश दयाल स्वामी।
यह संसार असार है नहीं है दवामी॥
काल कर्म ने हमको घेरा सबही हैं पछतानी।
बुद्धि विवेक से हैं खाली कह कह थक रहानी॥
मौज आधीन किया है कामा हैं हम निष्कामी।
करम मेरे अब खतम करो देऊँ बासा निज धामी॥

कर्म भोग अथवा मौज

(ले० परमदयाल फ़क़ीर साहब)

राज़ कुदरत को समझने के लिए आया था मैं ।
कह रहा हूँ वह जो समझ चुका हूँ मैं ॥
मज़हब पंथ, योग, विद्या के चक्कर में आ गया ।
जो समझ में मेरे आया वह जगत को कह चला ॥

आज एक दुखी जीव का एक रजिस्ट्री पत्र आया। मेरे नाम के पहले परम पुरुष पूरन धनी लिखा हुआ था । पढ़ा ! आंखें बन्द हो गईं । दो घंटे के पश्चात् उठा हूँ ।

दातादयाले के एक लेख का स्मरण हुआ कि आगरे में शाहजहां के समय में कोई मौलवी थे विद्यार्थियों को दूर की सूझी। उन्होंने उनको शहंशाह कहकर आदर सतकार करना प्रारंभ किया । यहाँ तक हुआ कि वह दीवाने होकर अपने आपको शाहं-शाह ही समझने लगे । शासन ने उनको पकड़कर कारागार में डाल दिया । पूरा स्मरण नहीं रहा ।

किन्तु राधास्वामी मत में स्वामी जी महाराज को परम पुरुष पूरन धनी कहा जाता है, कबीर मत में कबीर साहब को भी ऐसे आलंकृत करते हैं । क्या ऐसे अलङ्कारों का कोई अधिकारी हो सकता है ?

यूँ तो प्राचीन काल में, प्रजा अपनी रीति के अनुसार एक राजा के पश्चात् दूसरे को गद्दी पर बैठाकर उसको पूर्वानु-सार अलंकारों से सुशोभित करती थी इसी प्रकार एक गुरू के पश्चात् दूसरे को गद्दी पर बैठाकर उसको वही पदवी दी जाती रही । किन्तु प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि जिनको इन शब्दों से भूषित किया जाता है वह ऐसे होते भी हैं या नहीं। मेरा उत्तर है कि नहीं। यह केवल दूसरों की दृष्टि से यह पदवी; मान,

प्रतिष्ठा के रूपों में हो जाती है। जिस प्रकार प्राणी आप ही पत्थर की मूर्ति बनाकर उसको विशनू अथवा शिव समझकर नमस्कार करते हैं। किन्तु परम पुरुष पूरन धनी अवस्था है अवश्य। यह नहीं कि कोई परम पुरुष पूरन धनी है नहीं। वह कौन आप प्रश्न करेंगे ?

वह वही है जिसने पूर्णता का इष्ट अपने अन्तर बनाया है एक सच्चा जिज्ञासू जो इस पूर्णता का इच्छुक है वह पूरण पुरुष पूरन धनी है। यदि वह न होता तो उसके अन्तर उस पूर्णता की इच्छा ही उत्पन्न न होती।

प्राणी के भाव विचार में पूर्णता का संकल्प बैठ जाना ही समय पर उसको पूर्ण बना देगा। अवश्य बनादेगा, अवश्य बनादेगा। इसलिये वास्तविक और सच्चा सेवक ही स्वामी है। प्रत्येक प्राणी पूर्णता का इष्ट स्थापित करके स्वयं पूर्ण हो जाता है। है तो प्रत्येक ही पूर्ण किन्तु साधन अनिवार्य है और वह साधन केवल पूर्णता के इष्ट से प्रेम करते रहना है। एक राजा अथवा राष्ट्रपति अपनी कुर्सी पर बैठकर राजा और राष्ट्रपती कहलाता है और वैसे ही कार्य करता है। इसी प्रकार एक अपूर्ण प्राणी अपने अन्तर अपने आप में पूर्णता का ध्यान बांधकर या वहाँ बैठकर पूर्ण हो सकता है।

ऐ संसार के दुखी प्राणियो ! मैं तुमको विश्वास दिलाता हूँ कि वह पूर्ण पुरुष, पूरन धनी तुम आप हो यह दुख क्लेश और आपत्ति इसी कारण आती हैं कि तुम पूर्णता की ओर आओ अपने आप में पूर्णता का इष्ट बनाकर ठहरो और तुम स्वयं पूर्ण होकर अपने जीवन को शानदार, शादआन सुखी बनाकर व्यतीत कर सकोगे।

यही रहस्य बताने के लिए राधास्वामी दयाल सत्य कबीर गुरू नानक, दाता दयाल, शामलेशाह वैष्णवों के ऋषि व अन्य

महान पुरुष प्रगट होते रहते हैं।

सत्संग से रहस्य को समझो। भेद लो। अज्ञान, भ्रम, संशय, संदेह दूर करो। सतगुरू इष्ट है पूर्णता का जितना उससे अन्तर में प्रेम करोगे उतना ही लाभ होगा।

उसी दुखी प्राणी को उत्तर दे दिया कि तेरा दुख अवश्य दूर होगा। विश्वास और निश्चय रख। उस परम पुरुष पूर्ण धनी को अपने अन्तर समझ।

ढूंढ उसको अपने अन्तर वह तो तुम्हरे पास है।
वह न हुशियारपुर में न वह रहता व्यास है॥
न आगरे है न उसका डेरा न धरन न आकाश है।
दाता कह गये वह हर प्राणी अपनी सच्ची आस है॥
सतसंग किसी कामिल का करके राज को लो तुम समझ।
वह यक़ीन करा देगा तुमको कि सब कुछ तुम्हारे पास है॥
अज्ञानियों और बहमियों के लिये है प्रगट हुआ।
कहता हूं अनुभव अपना यही अनुभव ही सुख राशि है॥
मन की चंचलताई से मित्रो! बात समझ आती नहीं।
इसको थिर करने के लिये सुमिरन, भजन अभ्यास है॥

कर्म भोग अथवा मौज

(ले०—परमदयाल फ़क़ीर साहब)

जो जैसा बनके आया कुदरत में वैसा काम करता है।
तमब्बुज हस्ती हर एक वजूद को हरकत में रखता है॥
उसी के ज़ेर असर यह दीवाना भी काम करता है।
अनुभव ज़िन्दगी को वह काग़ज़ पर लिखता रहता है॥

आज ट्रब्यून पत्र को देख रहा था वर्तमान रूस के विलैस-टिक बम्ब के टैस्ट व अन्य देशी वृतान्तों को पढ़ा। जन साधारण की बेचैनी, दौड़धूप, मानव जाति का भविष्य आदि के भय उत्पन्न

करने वाली घटनाओं का दृश्य सामने आया जो कि पत्र में था।

कोई वशर ऐसा नहीं जो संग दोष से बच सके।
ख़ारजी असरात असर करने से न रह सके॥

इसलिए यह विचार उत्पन्न हुआ कि संसार क्या है? संसार एक विचित्र खेल है। प्रकृति ने आश्चर्य जनक खेल खेला है।

कोई दुखी, कोई सुखी, कोई हंसता, कोई रोवता।
कोई बा सेहत, कोई रोगी, कोई आनन्द है लेवता॥

इस द्वन्द के जगत के परे भी क्या कोई अवस्था है? वह मानव जीवन इस त्रिगुण आत्मिक जगत से ऊँचा होकर इस सुख, दुख आदि से मुक्त हो सके। शास्त्रों व संतों ने बहुत सी बातें कही हैं।

किसी ने भक्ति, किसी ने योग, किसी ने ध्यान, योग बतलाया।
किसी ने सुरत शब्द; किसी ने ज्ञान मार्ग बतलाया॥
हमने यह सारे कर करके देखे कहूं जो अज़माया।
आरज़ी यह हालतें हैं आरज़ी तसकीन है सबको पाया॥
तोता को जब बिल्ली ने पकड़ा भूल गया रामनाम को।
आख़िर को टैं टैं ही करता रहा जब तक प्राण न गमाया॥

किन्तु जब तक जीवन है प्राणी अपनी प्रकृति से विवश है कि वह दौड़धूप करे। इस दौड़धूप की तह में यदि कोई वस्तु कार्य करती है वह है वासना, इच्छा, आशा। उसका सम्बन्ध संकल्प से है। यह सत्य है कि संकल्प से परे भी कोई अवस्था है वह है प्रकाश का मण्डल। किन्तु औरों के विषय में नहीं कह सकता हूं अपना अनुभव वर्णन करता हूं कि अत्यन्त अभ्यासी होते हुए भी चौबीस घंटा मेरे लिए इस अवस्था अर्थात् शब्द और प्रकाश के मण्डल में रहना कठिन है। हाँ! वहां रहने का प्रभाव अवश्य इस शरीर और मन के जगत में आनन्द दायक